माँझी, पतवार और किनारा

लेखक की अन्य रचनाएँ

काले नगर में

पथ से दूर

मौलश्री

राग और त्याग

जिन्दगी की साँझ

कूल और कगार

कुश और कन्या

माँझी, पतवार और किनारा

[मौलिक व सामाजिक उपन्यास]

लेखक—

कमल शुक्ल

प्राप्ति-स्थान

हिंदिया प्रकाशन, १०४२, बाजार सीताराम,

दिल्ली

प्रथमावृत्ति १९५६ [मूल्य २॥)

प्रकाशक
हिंदिया प्रकाशन
दिल्ली.

अन्य प्राप्ति-स्थान

१. राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
२. दिल्ली पुस्तक सदन, नई दिल्ली
३. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद,
४. विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता
५. शर्मा बुक डिपो, पटियाला

मुद्रक
सम्राट् प्रेस,
पहाड़ी धीरज, देहली

समर्पण—

पूँजीपतियों के कठोर कारागार से मुक्ति पाने के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन देने वाले परम पूजनीय श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' को यह प्रथम हिंदिया प्रकाशन का पुष्प अर्पित है।

प्रकाशक—

प्रेरणा, तथ्य और लक्ष्य

जीवन में सभी प्रकार के व्यक्ति सम्पर्क में आते रहते हैं। उनमें से कोई विलक्षण होता है, कोई विचारणीय और कोई बिल्कुल साधारण। अच्छे-बुरे, ऊँच-नीच और नेक-बद की परख करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। मनुष्य का अध्ययन तो उसके अन्तर और बाह्य रूप से कर मिलता है। वह सोचता कुछ है और करता कुछ है। उसकी मनोवृत्ति में स्थिरता नहीं आ पाती। तभी वह कदम-कदम पर फिसलता है और दुनिया उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगती है।

उपर्युक्त श्रेणी के लोग फिर भी भले हैं; क्योंकि दुनिया उनसे घृणा करती है और इसीलिये समाज में उनका एक स्थान बन जाता है। इन निर्दोषों और सीधे-सादे लोगों को तो समाज ने घृणा का पात्र बना डाला; किन्तु उनकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा जो उसके शीर्ष-स्थान पर शराफत का चोगा पहने बैठे हैं। जिन्हें समाज के विषधर कहना अनुपयुक्त न होगा। इनके कार्यों में साक्षात् दानवता सामने आ जाती है और उसके सम्मुख भोली मानवता दुबककर बैठ जाती है। कौन ऐसा हृदयहीन होगा जो अन्याय को भी न्याय कहकर पुकारेगा? लेकिन भलमनसाहत का टीका लगाये इन धूर्तों के लिये दिन में भी रात ही रहती है।

धर्म और आदर्श से च्युत होकर भला मानव कब तक जी सकेगा? कब तक वह अर्थलिप्सा और इन्द्रिय-लोलुपता के भँवर

में पड़कर अपने को ठगता रहेगा ? स्वार्थ और स्वत्व कब तक उसका साथ देंगे ? तथ्य तो कहता है कि जीवन में केवल एक लक्ष्य होना चाहिये। वह भी ऐसा हो, जिसकी ओर उँगली न उठ सके। जिसमें पाप और पुण्य की परिभाषा ही न हो। केवल मात्र एक ध्येय हो—सदैव निश्चित कार्य में व्यस्त रहना। तभी मुक्ति का द्वार स्वयं अपने-आप खुल जायेगा और उस स्वर्ण अवसर पर किसी को किसी से शिकायत न होगी। कर्म प्रधान है। उसके भिन्न-भिन्न रूपों को परखकर उनके अनुकूल चलना ही समझदारी है।

'माँझी, पतवार और किनारा' उपन्यास के रूप में एक ऐसा ही चित्र है। इसमें मानव के परिवर्तित रूपों का समावेश है और है जन-जागरण का सन्देश। पतन और उत्थान की सीढ़ियों के साथ विश्वास और आत्म-निर्भरता की सीढ़ियाँ भी जुड़ी हैं।

इस उपन्यास को प्रस्तुत करते हुए मैं यह आशा करता हूँ कि जो पाठक इसकी दिशा के विपरीत चल रहे हैं, वे इसमें निर्दिष्ट पथ के गामी बनें।

ज्येष्ठ-अमावस्या
२१-५-१९५५

कमल शुक्ल

७८।२५६, अनवर गंज,
कानपुर

प्रथम खण्ड

'माँझी'

: १ :

जेठ की चिलचिलाती धूप तारकोल की काली सड़क को तवे की भाँति तपा रही थी। ग्रीष्म की उष्णता का प्रकोप बेचारी सड़क नहीं सह पाई, तभी तो उसके वक्ष में घाव हो गये थे और असित रक्त से उसका सम्पूर्ण कलेवर भीग रहा था। रंजन की रबर की चप्पलें आग जैसी जल रही थीं। सिर पर सूर्य की सीधी किरणें पड़कर उसे स्वेद से नहला रही थीं। गरम लू के झोंके उसकी फटी कमीज के वातायन से प्रवेश कर शरीर को झुलसा रहे थे। फिर भी वह पथ पर आगे बढ़ा जा रहा था।

दोपहर को रिक्शे चलना आज भी नित्य की भाँति बन्द था। ताँगे और इक्कों को खींचते मुँह से श्वेत दूध-सा फेनिल झाग चुआते हुए दुबले-पतले घोड़े यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो रहे थे। डीजल आयल का भद्दा और बदबूदार धुँआँ उगलती हुई बसें सड़क पर सर्र-सर्र करती हुई रपट रही थीं। रंजन पत्नी रामी के लिये दवा

लेकर घर जा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि यदि दवा ले जाने में तनिक भी देर हो गई तो रामी का ज्वर बढ़ जायेगा। फिर कौन बच्चों को संभालेगा और कौन घर की देखभाल करेगा। उसे अपने तन-बदन और भूख-प्यास किसी की भी चिन्ता न थी। रामी के स्वास्थ्य के निमित्त वह आकुल हो रहा था।

घर आ गया। रंजन ने एक अपराधी की भाँति रामी के कमरे में प्रवेश किया; क्योंकि दवा लाने में उसे पर्याप्त विलम्ब हो गया था। अस्थिचर्मावशिष्ट रामी पति की प्रतीक्षा करते-करते सो गई थी। रंजन ने उसे जगाया नहीं। उसने धीरे से उसके बदन को छुआ। चौंककर हाथ हटा वह एक ओर जाकर खड़ा हो गया। ज्वर बड़े वेग से बढ़ आया था। वह वहीं पर खड़े-खड़े अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगा कि कहा जाता है सृष्टि-नियन्ता की दृष्टि में सब एक हैं। फिर क्या कारण है कि एक व्यक्ति बिना परिश्रम और उद्योग किये ही आराम से चैन की वंशी बजाता, और दूसरा कठोर श्रम और प्रयत्न करने के बावजूद भी अपने क्षेत्र में सफल नहीं हो पाता? क्या इसी का नाम दुनिया है? क्या यह सत्य है कि आज के इस युग पर कलियुग का स्पष्ट प्रभाव पड़ रहा है? शायद तभी संसार की गतिविधि अपने में परिवर्तन लाने की अपेक्षा विलोम हो गई है क्या...?

सहसा रंजन की विचारधारा टूट गई। रामी के पास पड़ी हुई नवजात लड़की 'केंहाव-केंहाव' करने लगी। रंजन ने आगे

बढ़कर उसको गोद में उठा लिया और हिला-हिलाकर बहलाने का प्रयत्न करने लगा। रामी की आँखें खुल गईं। वह साहस करके उठी और रंजन की ओर देखती हुई बोली—"लाओ मुझे दो। तुमसे नहीं भटकेगी।"

रामी के दोनों हाथ आगे बढ़ आये थे। उनको एक हाथ से पीछे ढकेलता हुआ रंजन कृत्रिम रोष जताकर बोला—"तुम्हें क्या हो गया है रामी ? आग ऐसी देह जल रही है। पहले अपने शरीर को संभालो फिर दुनिया भर की चिन्ता करना।"

और इसके बाद रंजन ने बच्ची को दूसरे खटोले पर लिटा दिया। फिर शीघ्रता के साथ कटोरी में एक खुराक दवा डालकर रामी को पिलाने लगा। दवा बेहद कड़वी थी। रामी को पीते ही उल्टी हो गई। रंजन ने उसे पानी पिलाया और फिर बैठकर पंखा करने लगा। मीना और जगत पड़ोस में खेल रहे थे। दोनों बाप के पास आकर बैठ गये। रंजन ने एक हाथ से कटोरी में पड़ी हुई दूध में डूबी रुई की पोनी छोटी बच्ची के मुँह में लगा दी। वह चुप हो रही और चुकुर-चुकुर दूध पीने लगी।

रामी ने धीरे से आँखें खोलीं और टुकुर-टुकुर पति की ओर निहारने लगी। रंजन भी दुखिया नेत्रों से पत्नी के रुग्ण शरीर को देख रहा था।

"रंजन बाबू !" सहसा बाहर से किसी की आवाज आई।

रंजन बाहर गया और चौखट के पास पड़ा हुआ पोस्टकार्ड उठा लाया। अब उसकी समझ में आया कि आवाज पोस्टमैन

ने ही दी थी। पत्र पकड़े हुए वह अन्दर आया और रामी की चारपाई पर बैठकर पढ़ने लगा।

रामी ने देखा कि पत्र पढ़ते ही रंजन की मुखाकृति-कुछ-की कुछ हो गई है और वह किसी गहरे विचार में डूब गया है। उसने पोस्टकार्ड उससे ले लिया और एक ही दृष्टि में पढ़ गई। चिट्ठी हाथ से फर्श पर गिरपड़ी और साथ ही एक लम्बी निःश्वास उसके मुँह से निकल गई।

एक दीर्घ उच्छ्वास लेकर रंजन पत्नी की ओर उन्मुख होकर कहने लगा—"अफसोस करने से कोई लाभ नहीं रामी। अपनी तन्दुरुस्ती की ओर देखो। जो चीज भाग्य में नहीं थी उसका नष्ट हो जाना ही अच्छा है।"

"यह तुम कह सकते हो।" कहते-कहते रामी की आँखें भर आईं। रुदन के वेग को दबाती हुई वह फिर बोली—"पुरखों की देहरी भी बैठ गई। पता नहीं क्या होने वाला है। पारसाल की बरसात में जितना घर गिरा था यदि बन जाता, तो आज यह नौबत न आती। बरसात शुरू होने के पहले ही वह भर-भराकर बैठ गया।"

"इसमें अपना क्या वश था तुम्हीं सोचो? वैशाख में हफ्तों मूसलाधार पानी बरसा। कच्ची दीवालें गीली हो गईं और कड़ी धूप में जब वे सूखीं तो नींव कमजोर पाकर लौट पड़ी। यह होना ही था; क्योंकि न नौ मन तेल होता और न राधा नाचती।" इतना कहकर रंजन चुप हो गया।

रामी को चैन नहीं पड़ रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि अब उसका परिवार इस जीवन में पनप नहीं सकता; क्योंकि जड़ें खोखली हो गई हैं। अभी उसके प्रसव में खर्च हुआ। फलस्वरूप रंजन को अपनी टाइप-मशीन बेच देनी पड़ी। अब वह किराये की मशीन से काम चला रहा है। पन्द्रह रुपये महीने का मकान है। आठ महीने का किराया उसका भी चढ़ गया है। बीस-पच्चीस दिन से रंजन उसकी बीमारी और प्रसव की दौड़-धूप में लगा हुआ है। कचहरी जा ही नहीं पाता जो कुछ टाइप करे। रोटियों के लाले पड़ रहे हैं। दवा के लिये पैसे की अलग आवश्यकता है। आखिर यह गृहस्थी की गाड़ी कैसे चलेगी ?

रामी मनन में खो रही थी और पंचवर्षीय बालक जगत तथा तीन साल की अबोध बालिका मीना दोनों भूख से बिलबिला रहे थे। रंजन ने जल्दी से अँगीठी जलाई और खिचड़ी चढ़ा दी। रामी को अभी अन्न ज्वर की वजह से नहीं दिया जाता था। प्रसूत का ज्वर था। ठीक होने में समय लगता यह तो पुरातन परम्परा है, इसीलिये रंजन उसको दूध के अतिरिक्त और कुछ नहीं देता।

खिचड़ी पक गई। रंजन ने दोनों बच्चों को परोस दी और स्वयं भी उनके साथ ही खाने बैठ गया। अभी उसने पहला ग्रास उठाया ही था कि मकान मालिक के बूढ़े मुन्शी ने बाहर से आवाज लगाई। रंजन ने कौर छोड़ दिया और हाथ धोकर बाहर जाने लगा। रामी भी मुन्शी की आवाज़ पहचान गई थी।

वह भी धीरे-धीरे पति के पीछे जा किवाड़ों की ओट में खड़ी हो गई। उसने सुना। मुंशी रंजन के सामने दोनों हाथ फटकार कर कहरहा था—"अभी तक तो तुम आज का वादा कल पर टालते रहे; लेकिन अब क्या करोगे ? पारसनाथ जी ने नालिश कर दी है। अगर आठ दिन तक किराया नहीं देते हो तो मकान खाली करवा लिया जायेगा।" इतना कहकर मुन्शी एक विजयी बहादुर योद्धा की भाँति वहां से अकड़ता हुआ चला गया।

रंजन भारी मन अन्दर लौटने लगा। वह सोच रहा था कि मुन्शी वाली बात रामी को नहीं बताएगा। उसे चिन्ता हो जायेगी। इससे बीमारी घटने की अपेक्षा और बढ़ेगी। लेकिन मनुष्य का सोचा हुआ होता ही कब है। किवाड़ों के पास आते ही उसकी और रामी की आँखें चार हो गईं।

रामी पति का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर लिवा लाई और थाली के पास बैठाती हुई बोली—"खिचड़ी खा लो। आखिर कहाँ तक सोचोगे। जानते नहीं कि आपत्ति आती है तो एक ओर से नहीं, बल्कि चारों तरफ से एकदम आ जाती है।"

लेकिन रंजन ने कौर नहीं उठाया। वह एकटक फर्श की ओर देख रहा था।

"खाते क्यों नहीं हो ?" कहते-कहते रामी रुआँसी हो आई और रंजन का हाथ बलात थाली की ओर खींचने लगी।

रंजन की दृष्टि पत्नी के मुख की ओर गई। उसे ऐसा आभास हुआ कि यदि वह खायेगा नहीं, तो रामी अभी रो देगी।

विवश होकर वह खाने लगा। उस पर पंखा झलती हुई रामी कहने लगी —"आज के जमाने में ईमानदारी का कोई मूल्य नहीं रह गया है। मकान खाली हो जायगा कोई बात नहीं। हम लोग कहीं-न-कहीं जाकर अपना सिर छिपा लेंगे। चिन्ता करके खून जलाने से क्या फायदा ?"

रंजन चुपचाप सुनता रहा। और रामी कहती गई—"आदमी को बड़ी-से-बड़ी मुसीबत में भी नहीं घबड़ाना चाहिये। समाई करने वाला ही बड़ा होता है। मैं तो कहती हूँ कि भगवान कोई कसर न उठा रखना हम लोगों के साथ। नहीं तो तुम्हारी परीक्षा अधूरी रह जायगी।"

रंजन फिर भी कुछ नहीं बोला। वह खाना खाकर रामी से बिना कुछ कहे ही घर से बाहर निकल गया।

× × ×

रंजन के चले जाने के बाद रामी सोचने लगी कि पुरुष को किसी भाँति भी चैन नहीं। यदि वह परिवारहीन हुआ तो समाज उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखता है, अगर घर-गृहस्थ हुआ तो तनिक सा पल्ला हल्का होते ही वह टीका-टिप्पणी का पात्र बन जाता है। समय अब दिन पर दिन टेढ़ा आता जा रहा है। क्या गरीबों का नाम-निशान ही मिट जायेगा ? अकेले शरीर होने पर नारी हो अथवा पुरुष सभी अपना किनारा कर सकते हैं। लेकिन दुध-मुँहे बच्चों को छोड़कर जान भी तो नहीं दी जा सकती।

इसी प्रकार रामी रंजन के लिये विचार करने लगी कि कहीं

ताव में आकर वे (रंजन) पारसनाथ के पास तो नहीं चले गये जो नया झंझट उठ खड़ा हो। या यह भी हो सकता है कि कचहरी चले गये हों। टाइप करेंगे तब कहीं जाकर शाम तक थोड़े से पैसे लायेंगे। वह देवी-देवता मनाने लगी कि चाहे शाम तक उसके परिवार को नमक-रोटी ही क्यों न नसीब हो, लेकिन शान्ति रहना आवश्यक है।

छोटी बच्ची फिर 'केंहाव-केंहाव' करने लगी थी। रामी ने उसको गोद में उठा लिया और अपना सूखा तथा ज्वर से जलता हुआ स्तन उसके मुख में देने का उपक्रम करने लगी।

: २ :

लगनशील, कर्मनिष्ठ और कर्तव्यपरायण व्यक्ति के लिये लोगों का कथन है कि कभी असफलता उसके पास आ ही नहीं सकती। लेकिन आजकल तो यह उक्ति कुछ मिथ्या-सी लगी प्रतीत होने लगी है। ऐसा लगता है कि भरे पेट को सभी खाने को पूछते हैं; किंतु रीते कोई बात भी नहीं करता। अर्थ का सबसे बड़ा मित्र है स्वार्थ और आज यह समस्त विश्व उसके हाथों की कठ-पुतली हो रहा है। इस अर्थ-प्रधान युग में बिना पैसे के काम नहीं चलता। सहारा देने वाले तो चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी न मिलेंगे। हां, आश्रय छीनने वालों का अभाव नहीं है। अपने-पराये, स्वजन-परिजन और दोस्त-दुश्मन सभी वित्त की आँखों से देखे जाते हैं। कड़ा परिश्रम लेने पर भी व्यक्ति को कोई मन चाहा पारिश्रमिक देकर सन्तुष्ट नहीं कर पाता। फिर भला रंजन की क्या बिसात थी जो वह आर्थिक समस्या से छुटकारा पा

लेता। यह तो उसके जीवन का अभिशाप था।

रंजन की अवस्था अभी केवल पच्चीस साल की ही थी; देखने में वह तीस-बत्तीस वर्ष का युवा प्रतीत होता था। बीस वर्ष की आयु में एम० ए० किया। बस तब से लेकर वह अब तक भटक ही रहा था। एम० ए० की डिग्री उसके किसी काम नहीं आई। कोई मार्ग सम्मुख न देखकर उसने कचहरी में बैठकर टाइप करना आरम्भ किया। अभी इस कार्य को करते उसे एक वर्ष भी पूरा न हो पाया था कि परिस्थितिवश मशीन बेच देनी पड़ी। उसके बाद से वह निरन्तर परेशानियों में ही पड़ता चला गया।

छोटी अवस्था में रामी को उसके गले बाँध रंजन के पिता परलोकगामी हो गये। मां का तो उसने मुँह ही न देखा था। वह सब भांति अनाश्रित ही था। उसके सिर पर छाया न थी, बल्कि कड़ी धूप का अखण्ड साम्राज्य था। पत्नी रामी यद्यपि उसकी सच्ची साथिन थी, किन्तु स्त्री तो पुरुष की छाया होती है। इस भाँति वह बिल्कुल अकेला था। इसी कम आयु में वह तीन बच्चों का बाप भी बन गया। समस्यओं पर समस्याएँ आकर गिरती गईं; लेकिन वह उनकी एक पर्त भी न हटा सका।

रंजन का साहस ही उसका सम्बल था। वह आज तक कभी निराश नहीं हुआ। उसे सदैव यह आत्मविश्वास रहा कि यदि आज नहीं तो कल कोई-न-कोई निश्चित मार्ग अवश्य बन जायगा। वह आने वाले कल के लिये हमेशा जागरूक रहता। स्वाभिमान

ही उसकी सम्पत्ति थी। उसे वह किसी शर्त पर खोने के लिये प्रस्तुत न था। और एकमात्र यही एक कारण था कि आज तक वह अपने मकान-मालिक पारसनाथ के पास गिड़गिड़ाने कभीं नहीं गया।

कभी-कभी मौन भी उग्र रूप धारण कर लेता है। जिस व्यक्ति को देर में गुस्सा आता है वह देर तक टिकता है और जो नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता उसका क्रोध क्षणिक होता है। इसी भांति रंजन को भी रोष देर में ही आता था। सिद्धान्त की बात है कि स्वस्थ व्यक्ति क्रोधी नहीं होता। उसमें समाई की शक्ति होती है। लेकिन जब वह आक्रोश में भर जाता है तो फिर शीघ्र शान्त होने की नौबत नहीं आती। ऐसे ही क्रोध के आवेग में रंजन पारसनाथ जैन की कोठी पर पहुँच गया और उनकी गद्दी के सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ 'नमस्ते' की रस्म चुकाकर बोला—"मालूम हुआ कि आपने नालिश कर दी है।"

"जी हाँ! और संदेशा भी आपके यहाँ भेजवा दिया था।" पारसनाथ जैन ने अपने बड़े-बड़े पीले-घिनौने दांतों से पान कुच-रते हुए जवाब दिया।

"आप तो जानते हैं कि अभी मैं किराया चुकाने में असमर्थ हूँ। आपको पुराने किरायेदार का ख्याल रखना चाहिये। घर के झँझटों से छुट्टी पाते ही मैं चुकता की रसीद बनवा लूँगा। कम से कम मुझ से पूछना तो चाहिये था। नालिश तो आप कभी भी कर सकते थे। यह......"

"फिजूल की बकवास मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है।" पारसनाथ ने उसकी बात काट दी। फिर अपने स्थूलकाय शरीर को समेटते हुये कहने लगे—"एक सप्ताह का मैंने समय दिया है। इस बात का ध्यान रखना और एक बात यह भी कान खोलकर सुन लो कि बिना रुपया लिये मेरे पास मोहलत माँगने न आना। मैं एक नहीं सुनूँगा।"

"सुन लिया।" इतना कहकर रंजन वहाँ से चल दिया।

पारसनाथ जैन उसके स्वाभिमान और हाजिरजवाबी को देखते ही रह गये। गद्दी के पास बैठे हुए एक वृद्ध चश्माधारी मुनीम ने कह डाला—"नखरा इतना और घर में भूँजी भाँग भी नहीं।"

"बोली और वाणी के ही अगर ये हजरत अच्छे होते, तो आज फटीचर बने क्यों घूमते।"

"मालिक के मुँह से इतना सुनते ही दूसरा चाटुकार मुनीम बोल उठा—"देखा नहीं कमीज और धोती में बहत्तर सौ छेद हैं और समझते हैं अपने को लाट साहब।"

इस पर सभी खिलखिला कर हँस पड़े। दूर जाते हुये रंजन के कानों में भी वह हँसी जाकर गूँज उठी।

पारसनाथ की कोठी से रंजन सीधा घर की ओर चला लेकिन इस समय उसके सम्मुख अपनी कोई भी समस्या न थी। वह शोषितवर्ग के बखेड़े में उलझ गया कि यही पारसनाथ जब मैं महीने-महीने पर किराया चुका देता था, तब ऐसे बोलता था

मानो इसके मुँह से फूल झरते हों। और आज जब मैं विपन्नावस्था में हूँ तो यह मेरा उपहास कर रहा है। आज मैंने जाना जो व्यक्ति मुँह का अत्यधिक मीठा होता है वह मन में मैल रखता है। वह किसी भी समय गिरगिट की भाँति अपना रंग बदल सकता है। आज का यह शोषक वर्ग, जिसने श्रम के ऊपर पूँजी का अधिकार जमा रक्खा है। मनुष्य के रूप में काला विषधर है। जिस प्रकार काले के आगे दिया नहीं जलता, ठीक वैसे ही पूँजी के आगे सत्य पर पर्दा पड़ जाता है। आज मनुष्य का व्यवहार नहीं रह गया है, पैसे का व्यवहार प्रधान है। व्यक्ति और उसके कार्य-कलापों का कोई अस्तित्व नहीं। अस्तित्व है तो केवल धन का।

मार्ग तय हो रहा था और रंजन सोचता जा रहा था कि मनुष्य को कभी इतराना नहीं चाहिये। अहम् ही उसका शत्रु है। किसी का भी अस्तित्व सदैव बना नहीं रहा। ऐसे ही पैसे की भी मर्यादा एक दिन अवश्य क्षीण होगी। चंचला लक्ष्मी आज पारसनाथ के पास है तो वह आपा खोकर बात करता है, कल यदि वह कंगाल हो जाय, तो फिर वह भी मेरी तरह इन्सान बन कर दुनिया के दुख-दर्द को अपनी आँखों से देखने लगेगा।

घर आ गया और रंजन अपनी धुन में व्यस्त चलता ही रहा जब दरवाजे पर खड़ा हुआ जगत उसके पीछे 'बाबू जी—बाबू जी!' कह कर दौड़ा, तब उसे बोध हुआ। उसने शिशु को गोद में उठा लिया और धीरे-धीरे घर के अन्दर प्रवेश किया।

: ३ :

धीरे-धीरे एक सप्ताह में रामी इस योग्य हो गई थी कि वह थोड़ी दूर चल-फिर सकती थी। रंजन को पारसनाथ के यहाँ से निराश होकर लौट आये आज सातवाँ दिन था। रामी को बड़ी चिन्ता थी कि कल क्या होगा। रंजन से जो पारसनाथ की वार्ता हुई थी वह उसे ज्ञात थी; फिर दूसरी युक्ति और क्या हो सकती थी? रामी सवेरे से लेकर दोपहर तक इसी समस्या पर विचार करती रही। अन्त में उसने यही तय पाया कि रंजन के कचहरी से लौटने के पहले ही वह पारसनाथ की कोठी पर जायेगी और उनसे दो-चार महिने की मोहलत मांगेगी।

पति के लिये स्त्री अपनी जान भी हँसते-हँसते दे देती है। फिर भला यह कौन सी बड़ी बात थी जो रामी चुप्पी साधे घर में बैठी रहती। यद्यपि रामी के पैर डगमगा रहे थे, डग अस्त-व्यस्त से पड़ रहे थे; लेकिन वह साहसकर आगे बढ़ी जा रही थी।

आज इस समय पारसनाथ कोठी के ऊपर वाले कमरे में आराम कर रहे थे। एक जीना चढ़ना ही रामी के लिये कठिन था और यहाँ पर प्रश्न था दो-दो जीने चढ़ने का। किसी प्रकार हिम्मत करके वह पारसनाथ के कमरे तक पहुँची। उस समय वे सोये तो न थे, बल्कि सोने का उपक्रम कर रहे थे।

पारसनाथ की अवस्था तीस-पैंतीस वर्ष के लगभग थी। रंग काला, शरीर स्थूल और मुख पर शीतला के दाग थे। मलमल का श्वेत कलीदार कुर्त्ता पहने वे दाहिनी कुहनी का सहारा लेकर लेटे थे। रामी को सामने देखते ही उठकर बैठ गये और पूछने लगे—"आप कहाँ से आई हैं? कहिये क्या काम है?"

"आप अपने किरायेदारों को भी नहीं पहचानते। बड़े आश्चर्य की बात है।" किंचित् मुस्कराहट के साथ रामी ने कहा और वहीं फर्श पर बिछी हुई कारपेट पर बैठ गई।

"मैंने पहचाना नहीं। एक किरायेदार हो तो याद रहे। यहां तो सैकड़ों किरायेदार हैं। कहिये आप कहाँ रहती हैं?" पारसनाथ प्रश्न करते जा रहे थे; मगर कनखियों से बराबर रामी की ओर देख भी रहे थे।

"मैं परेड पर रहती हूँ। सुना है कि कल सवेरे आप मकान खाली करवा लेंगे। आठ.........।"

"समझ गया आप रंजन की पत्नी हैं।" पारसनाथ यह कहकर गौरपूर्वक उसकी ओर देखने लगे।

"जी हाँ।" कहकर रामी ने भी अपनी दृष्टि उनके आनन पर

टिका दी।

कुछ क्षणों के लिये पारसनाथ मौन हो गये। वे सोचने लगे कि रामी अस्वस्थ होने पर जब इतनी सुन्दर है, तो स्वस्थावस्था में तो मानिन्द अप्सरा के लगती होगी। कमाल की खूबसूरती है उसमें। बेचारी का भाग्य ही फूट गया जो निकम्मा पति मिला। क्या खाकर वह आठ महीने का किराया चुकायेगा ?

कमरे में सीलिंग फैन बहुत सधी हुई चाल में चल रहा था। बाहर दरवाजे पर लगी हुई खस की टट्टी सूखने लगी थी। नौकर आकर उसे फिर तर कर गया। रामी बैठे-बैठे ऊब गई थी। वह उकताकर बोली—"हाँ फिर क्या कहते हैं आप मेरे लिये ?"

"क्या बताऊँ कुछ समझ में नहीं आता ? रंजन तो सीधे मुँह बात नहीं करता है। लेकिन आप बीमारी की हालत में ऐसी तेज धूप में दौड़कर आई हैं, कुछ तो खयाल करना ही होगा।" कहने के साथ ही पारसनाथ के नेत्रद्वय रामी के मुख पर जाकर अटक गये।

उसने लाज से अपना सिर नीचे झुका लिया और क्षीण स्वर में बोली—"यह आपकी मेहरबानी है। अगर दो-तीन महीने की छूट दे दें तो अधिक अच्छा हो।"

इस पर छूटते ही पारसनाथ बोल उठे—"आप दो-तीन महीने की मोहलत माँगती हैं और मैं छः महीने की छूट देने को तैयार हूँ। कोई रुपया देनेवाला भी तो हो।"

"मैं दूँगी आपको रुपये। छः महीने में तो सब प्रबन्ध हो

जायेगा।" कहकर रामी उठ खड़ी हुई और जाने का आयोजन कर दोनों हाथ बाँध नमस्ते करती हुई बोली—"आज्ञा है? अब जाऊँ मैं?"

पारसनाथ किसी भी भाँति रामी को अपने सामने से हटने नहीं देना देना चाहते थे। वे उसकी रूप माधुरी के पान करने का लोभ न संवारण कर सके। तनिक मुस्कराकर बोले—"बैठो, कहाँ जाओगी ऐसी धूप में? मैं तो अपनी ऐसी जान सबकी समझता हूँ। अभी ड्राइवर को बुलाता हूँ। कार पर बैठकर चली जाओ।" यह कहकर उन्होंने पास रक्खी हुई घण्टी बजाई। अभी घण्टी एक बार टुनटुनाई थी कि रामी ने आगे बढ़कर उस पर हाथ रख दिया और व्यस्त स्वर में बोली—"नहीं कोई आवश्यकता नहीं। मैं जैसे आई हूँ वैसे ही चली जाऊँगी। आप हैरान न होइये।"

"मैं तो आपके भले के लिये ही कहता था। आगे आपकी मर्जी।" मुस्कराते हुये पारसनाथ ने कहा। फिर तनिक चुप रहकर उसकी ओर उन्मुख होकर बोला—"हाँ, छः महीने की छूट में जो और किराया बढ़ेगा, उसका भुगतान कैसे होगा? क्योंकि अभी तो रंजन को आठ महीने का ही देना मुश्किल हो रहा है, फिर चौदह महीने का हो जायेगा।"

"धीरे-धीरे करके मैं सब निकाल दूँगी, आप निश्चिन्त रहिये।" कहकर रामी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वहाँ से चल दी।

पारसनाथ उसकी मराल गति को देखते ही रह गये। उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो सामने से कोई इन्द्र की अप्सरा जा रही है।

× × ×

सती-साध्वी नारी स्वभाव से कृपण और पतिपरायणा होती है। ऐसी ही स्त्रियों से घर स्वर्ग बन जाता है। रानी पारसनाथ जैन की कुप्रवृत्ति को समझी न हो ऐसा नहीं। लेकिन उसने रंजन से एक शब्द भी नहीं कहा। यहां तक कि अपने जाने वाली बात भी नहीं बतलाई। वह जानती थी कि रंजन बिगड़ेगा और जाकर अभी पारसनाथ की खबर लेगा कि मेरी स्त्री को कार पर घर पहुँचा रहे थे और मेरा उपहास किया। वह भली भाँति जानती थी कि इस बात को लेकर उत्पात उठ खड़ा होगा। फिर परिस्थिति किसी के भी संभाले नहीं सँभलेगी। शान्तिपूर्वक सभी कार्य धीरे-धीरे सम्पादित होते रहेंगे। उलझन करने से क्या लाभ ? यही सब बातें सोचकर वह चुप रही। उसने रंजन पर कुछ भी व्यक्त नहीं किया।

: ४ :

"हलो मिस्टर रंजन।" कहते हुए धोती और कुरता पहने हुये एक सज्जन ने रंजन से हाथ मिलाया।

रंजन एकदम चौंक उठा। वह पहचानने की चेष्टा करने लगा। तब तक आगन्तुक ने उसका कन्धा हिलाते हुए पुनः कहा—"कहो अच्छे तो हो?" फिर कुछ आश्चर्यचकित होकर बोला—"आज यह शक्ल कैसी बना रखी है?"

इतनी बातें सुनने के बाद अब रंजन को अतीत की याद आई और वह अपने कालेज के मित्र श्रीलाल के गले से लिपट गया। मारे हर्ष के रंजन की आँखों में पानी भर आया। इन्टरमीडियेट तक श्रीलाल उसके साथ पढ़ा था। आज मुद्दत के बाद दोनों मित्र आपस में मिले।

"तुमने मुझे इस गिरी हालत में भी पहचान लिया और मैं.........।"

अभी रंजन की बात पूरी भी न हो पाई थी कि श्रीलाल बोल पड़े—"क्या करते हो आजकल ? मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गई है तुम्हारा यह फटा-पुराना लिबास देखकर।"

श्रीलाल के स्थान पर यदि कोई दूसरा रंजन का पुराना सहपाठी उससे उक्त प्रश्न करता, तो वह उसका मुँह तोड़ जवाब देता। लेकिन श्रीलाल को वह अपना ही समझता था। इसलिये अपना कालेज छोड़ने के समय से लेकर अब तक का सारा इतिहास उसको सुना दिया।

श्रीलाल ने अपने मित्र के साथ पर्याप्त सहानुभूति प्रगट की और उसी सन्ध्या से रानी का उपचार करने का वचन दिया। रंजन को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही थी कि उसका मित्र डाक्टर है।

भाग्य का खेल था। तभी तो दोनों मित्र एक ही नगर में रहे और सालों मुलाकात न हुई।

रंजन ने पारसनाथ जैन के आने की चार-पाँच दिन तक प्रतीक्षा की, फिर निश्चिन्त हो अपने काम पर जाने लगा। पारसनाथ के लिये वह मन-ही-मन सोचा करता कि शायद दस-पन्द्रह दिन तक वह चुप रहेगा।

इस समय रंजन कचहरी से आ रहा था। श्रीलाल उसको अपनी डिस्पेंसरी लिवा ले गये। वहाँ से दोनों मित्र कार पर बैठकर घर आये।

× × ×

रंजन से श्रीलाल की अवस्था दो-तीन साल अधिक थी। इसलिये रामी श्रीलाल को अपने से बड़ा करके मानती थी। आते ही बड़े सत्कार से बैठाती और बिना नाश्ता किये जाने नहीं देती। वह श्रीलाल को आदमी के रूप में देवता समझती थी, अतः वह उनसे श्रद्धा करने लगी। वह श्रीलाल को अपने घर का हाल बतलाती और श्रीलाल से उनके घर का पूछती। उसको यह जानकर दुःख हुआ कि श्रीलाल की पत्नी आज दो साल हुए नहीं रहीं। अपने पीछे एक दो साल की लड़की छोड़ गई हैं। वह नित्य ही श्रीलाल से उनकी लड़की मंजू को लाने का अनुरोध करती और श्रीलाल को नित्य ही उसका पालन करना पड़ता।

रंजन पत्नी की व्यवहार-कुशलता पर मुग्ध था और श्रीलाल पर भी उसकी प्रीति और बढ़ती जा रही थी।

एक दिन रंजन के सामने ही रामी ने श्रीलाल से कह डाला—"डाक्टर साहब, आप ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?"

श्रीलाल उसकी ओर देखने लगे। उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

"बिना नारी के घर की शोभा नहीं होती।" रामी फिर कह गई।

अब की बार धीरे से श्रीलाल ने कह दिया—"देखा जायगा।" और इसके बाद ही वे कमरे से बाहर हो गये।

घर आकर श्रीलाल सोचने लगे कि रामी कहती है कि बिना स्त्री के घर की शोभा नहीं होती। तो क्या मुझे ब्याह करना

पड़ेगा। नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपनी मंजू के लिए दूसरी माँ नहीं लाऊँगा। रामी से क्या मन नहीं बहलाया जा सकता। वह तो निरी भोली है। मुझे मानती भी है और मैंने उस पर उपकार भी किये हैं। सहज ही हाथ आ जायेगी।

इस प्रकार रामी के विषय में सोचते-सोचते वे बिना खाना खाये ही सो गये।

: ५ :

बद अच्छा बदनाम बुरा यह पुरानी कहावत है। आज के युग में बद की तूती बोलती है। बदनामी का टोकरा सिर पर उठाये जो पथ-भ्रष्ट दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं, उन्हीं की आड़ में समाज के ये भेड़िये अपना शिकार खेल रहे हैं। आवारा लोगों का नाम तो मुफ्त में बदनाम है। आज की शराफत ऊपर से गोरी और भीतर से काली है। आवारा तो केवल मौखिक व्यभिचार तक ही सीमित हैं, लेकिन सभ्यता के पुजारी घर के अन्दर ही डाका डालते हैं। इनके लिये विधान के पन्ने कोरे हैं। नागेश्वर-प्रसाद राठी को भी बद की श्रेणी का ही व्यक्ति कहा जा सकता था।

नागेश्वर प्रसाद राठी तीस-छत्तीस साल के पुरुष थे। श्रीलाल की ही भाँति उसकी भी डाक्टरी अच्छी चलती थी। यह तो पुरानी रीति है कि जहाँ पैसा अधिक आया, वहाँ उसका

दुरुपयोग होना आरम्भ हो जाता है। राठी डाक्टर की आमदनी बहुत ही अधिक थी। अतः घर-गृहस्थी के अतिरिक्त उन्होंने अनेकों व्यसन जैसे शराब पीना, जुआ खेलना और व्यभिचार करना आदि पाल रखे थे।

श्रीलाल के अन्दर कोई भी लत न थी; लेकिन संगति अपना कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य डालती है। खरबूजा देखकर खरबूजा रँग पकड़ता है। यह दुनिया का पुराना दस्तूर है। धीरे-धीरे श्रीलाल भी राठी के रँग में रँग गये। इसी चिन्ता में घुल-घुलकर उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया।

वेश्यावृत्ति से दोनों मित्रों को घृणा थी। राठी का जीवन ही ऐयाशी था। कामलिप्सा से उसकी कभी तृप्ति नहीं होती। भोली कुमारियों और नई-नवोढ़ी बहुओं पर उसकी दृष्टि ऐसे पड़ती जैसे कबूतर पर बाज की। कभी-कभी जब श्रीलाल का मन इन फिजूल की बातों से विरक्त होने लगता, तो राठी साहब उसको पुट-पानी पर चढ़ाते हुए कहते—"आमाँ जाओ यार कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो। आदमी तो वह हीरा होता है जो ऐब करे और छिपा ले जाय।"

श्रीलाल प्रोत्साहन पाकर राठी के ही अनुकूल चलने लगते। यही कारण था कि आजकल रानी श्रीलाल का केन्द्र-बिन्दु बनी हुई थी।

श्रीलाल धीरे-धीरे रंजन के परिवार से अब अधिक सम्पर्क रखने लगे। कभी-कभी वे खाना भी वहीं खा लेते और मन्जू,

वह तो सारे दिन जगत और मीना के ही साथ खेला करती। रामी स्वस्थ हो आई थी। श्रीलाल उसकी ओर अग्रसर होना चाहते थे; लेकिन साहस उनका साथ नहीं देता था। जब वे कोई बात कहने के लिये मुँह खोलते तो ऐसा लगता, मानो रंजन पीछे खड़ा सुन रहा है। वे बड़े असमंजस में पड़ जाते। रामी का ध्यान वे एक क्षण के लिये भी भुला नहीं पाते।

× × ×

दुर्बल व्यक्ति के लिये अधिक परिश्रम करना सर्वथा वर्जित है। लेकिन रामी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वह थोड़ा सा आराम मिलते ही घर-गृहस्थी में व्यस्त हो गई। परिणाम प्रत्यक्ष था। ज्वर ने पुनः उस पर अपनी कृपा-दृष्टि कर दी।

एक दिन संध्या को वह रसोई में बैठी परामठे बना रही थी कि वैसे ही श्रीलाल आ गये। रंजन दोनों बच्चों को लेकर पार्क चला गया था और जाते-जाते रामी को मना कर गया था कि वह खाना न बनाये। मगर रामी कब मानने वाली थी।

श्रीलाल भी रामी को सवेरे मना कर गये थे कि वह आग के पास न बैठे। आते ही वे स्वत्ववश बिगड़कर बोले —"इस तरह से तुम इस जिन्दगी में अच्छी नहीं हो सकतीं रामी।"

रामी इस समय प्रसन्न मुद्रा में न थी। आज एक सप्ताह होता आ रहा था रंजन को कचहरी से एक पैसा नहीं मिला इसी चिन्ता में वह खोई थी।

अचानक श्रीलाल को सामने आगया देख वह सम्भल कर

बैठ गई और उपेक्षापूर्वक बोली—"क्या होगा अच्छी होकर।"

श्रीलाल वहीं पड़े मोढ़े पर बैठ गये और उसके आनन पर दृष्टि टिकाकर बोले—"क्या बीमारी से घबड़ा गईं ? आदमी को कभी मन छोटा नहीं करना चाहिये।"

"क्या बताऊँ डाक्टर साहब ? मन दुखिया हो गया है हँसता-खेलता परिवार देखने के लिये। मैं………।"

"आखिर क्या अभाव है तुम्हें ? रह गई रंजन की बात सो उसके मैं लिए कोशिश कर रहा हूँ। कहीं-न-कहीं अच्छी नौकरी का प्रबन्ध हो जायेगा।" रामी की बात काटकर श्रीलाल ने अपना प्रभाव जमाया।

"अभाव की बात मैं नहीं कहती डाक्टर साहब। मैं तो आये दिन की उलझनों से ऊब गई हूँ। जी चाहता है जीवन का अन्त कर डालूँ।"

रामी की इस बात पर छूटते ही श्रीलाल बोल उठे—"छि: छि:, कोई ऐसा सोचता है। यह तो निरा पागलपन है। मैं आखिर किस दिन के लिये हूँ। मित्र का कर्तव्य है कि गाढ़ में वह मित्र के काम आये। बोलो रामी तुम्हारी चिन्ता किस प्रकार दूर हो सकती है ? इस प्रकार तबियत मलीन रखने से तो बीमारी बढ़ेगी।"

रामी को अब होश आया कि वह किस प्रवाह में बह गई थी। उसे क्या श्रीलाल से इस प्रकार बातें करनी चाहियें थीं, जैसे उसने की हैं। अपना दुःख दूसरे पर रोने से क्या लाभ ?

वह सजग होकर बोली—"आप तो घर के आदमी हैं। समय पर आप नहीं काम आयेंगे तो क्या राहगीर आयेंगे। जब भी कोई आवश्यकता होगी निस्संकोच होकर कह दूँगी। आप इत्मीनान रखिये।"

श्रीलाल समझ गये कि रामी ने उनको टाल दिया है। इस-लिये वे फिर अधिक देर वहाँ न रुके। दो मिनट बैठकर चल दिये।

: ६ :

एक तो करेला और उस पर भी नीम चढ़ा। आठ-दस दिन से रंजन यों ही एक पैसा नहीं पाता था; उस पर एक महीने के लिये कचहरी बन्द हो गई। दीवानी से ही उस को थोड़ा-बहुत काम मिल जाया करता था। फौजदारी वाली कचहरी में उस की पूछ न थी। हार मानकर वहाँ बैठा भी तो उसी दिन भगा दिया गया; क्योंकि उस के पास लाइसेन्स नहीं था। लाइसेन्स बनवाने के लिये पैसे कहाँ से आते, जब एक ओर घर में रोटियों के लाले पड़े थे और दूसरी ओर दिनोंदिन मशीन का किराया बढ़ रहा था।

घर में रानी ने पुनः चारपाई पकड़ ली थी। रंजन एक-एक पैसे के लिये तबाह था। वह परेशान हो उठा और सोचने लगा कि क्या करना चाहिये। भाग्य उस का साथ नहीं दे रहा था। दिन-भर दौड़ते-दौड़ते वह हैरान हो चला था।

नारी का मन पुरुष से अधिक दुर्बल होता है। रामी अभी तक तो समाई किये समस्याओं से लड़ती रही; लेकिन अब उस के धैर्य का बाँध टूट गया था। रात को रंजन ने उसे बतलाया कि टाइप वाले ने किराया न वसूल होने से अपनी मशीन वापस ले ली है। रानी को रात-भर नींद नहीं आई। वह वर्तमान समस्या पर विचार करती रही।

सोचते-सोचते एक युक्ति रामी की समझ में आई। वह अपनी माँ के पास कुछ दिनों के लिये बच्चों को साथ लेकर जाना चाहती थी। उसका अनुमान था कि इससे रंजन की परेशानी घट जायेगी। बहुत साहस किया रामी ने, लेकिन वह रंजन से इस बात को कह न पाई। उस के मस्तिष्क पर किसी ने घूँसा मारा और अन्तःकरण में कोई ललकार कर कह उठा—"स्त्री जीवन-मरण की संगिन होती है। इसीसे वह चिरसंगिन कही गई है। क्या तू आज अपने नारीत्व की परिभाषा भूल गई है। रंजन को अकेले छोड़कर न जा। उसका दिल टूट जायगा। अपना इरादा बदल दे, इसी में भलाई है"।

रामी जैसे सोते से जाग पड़ी हो। उसके मुँह से अनायास ही निकल गया—"नहीं, नहीं मैं उनको छोड़ कर कहीं न जाऊँगी। मैं मैके नहीं जाऊँगी"

यह स्थिति रामी की था और रंजन, वह भी पागलों जैसा हो रहा था।

× × ×

रामी की बीमारी का समाचार किसी प्रकार उसकी माँ तक पहुँच गया था। इधर जेठ-दशहरा का स्नान भी था। इसलिये वे गाँव की पड़ोसिन मीरा के साथ कानपुर चली आईं। रामी माँ के आगमन से अत्यधिक प्रसन्न हुई और पति के सामने उन्हें वचन-बद्ध कर लिया कि जब तक मैं अच्छी न हो जाऊँ, तब तक उन्हें (माँ) कानपुर में ही रहना पड़ेगा। वृद्धा माँ अपनी इकलौती का सदा से मन रखती चली आई थीं। वह सहमत हो गईं।

अपनी बाल सहेली मीरा से मिलकर रामी खूब रोई और उसे भी माँ के साथ रहने के लिये विवश कर दिया।

मीरा मढ़ैया गाँव में रामी के ही पड़ोस में रहती थी। परिवार में कोई न था। ब्याह के एक साल बाद ही विधवा हो गई। अब वह इक्कीस वर्ष की थी। ससुराल से कोई सम्बन्ध न था। बाप के दो-तीन खेत थे। वे ही उसकी जीविका के साधन बने हुए थे।

गाँव का समाज हो अथवा नगर का, कामलोलुपों की कहीं भी कमी नहीं। आज के सभ्य समाज की यह नीति बन गई है कि किसी की भी मजबूरी हो उससे नाजायज फायदा जरूर उठाना चाहिये। कमजोर का गला दबाने का ही नाम शराफत है। दुनिया जिसे समझती है कि अमुक सभ्य व्यक्ति अमुक के साथ निःस्वार्थ उपकार कर रहा है वह उपकार न होकर अपकार होता है। किसी युवा लड़की की मदद करने को समाज कितनी

जल्दी राजी होजाता है, मगर किसी युवक के साथ ये समाज के ठेकेदार मौखिक सहानुभूति तक नहीं प्रगट करते।

मीरा विधवा होकर जब गाँव में आई और उसी साल उस का बाप भी नहीं रहा, तो गाँववाले उसे सिर आँखों पर उठाये फिरने लगे; क्योंकि वह जवान थी पूरे सत्रह साल की। झूठी हमदर्दी दिखला-दिखला कर गाँव के बड़े-बूढ़ों ने ही उसका चरित्र बिगाड़ दिया। बदनामी का डर देकर गाँव वाले उसके सतीत्व से खेलते रहे। धीरे-धीरे मीरा की भी शर्म खुल गई। संकोच उससे कोसों दूर चला गया। अब वह एक कुप्रवृत्ति की नारी थी।

रामी मीरा के चरित्र को भली भाँति जानती थी। उसे स्वयं अपने पर पश्चात्ताप हो रहा था कि मैंने व्यर्थ ही सनक में आकर मीरा को रोक लिया अन्यथा वह चली जाती। मीरा अच्छी स्त्री नहीं है। उसका यहाँ रहना उचित नहीं।

इधर रामी यह सोच ही रही थी उधर मीरा की दृष्टि आखिर रंजन पर जाकर अटक ही गई। रंजन के व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण था कि प्रत्येक की निगाहें अनायास ही उस की ओर उठ जातीं। अच्छा-खासा जवान था वह। देह माँसल, सीना खूब चौड़ा, उच्च ललाट—ये सब उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देते। उस का पुरुषत्व भी सोया न था, जाग रहा था। वह चाहे जितना परेशान हो, लेकिन कोई उसकी हैरानी को भाँप नहीं सकता था।

मीरा छेड़-छेड़कर रंजन से बातें करती और बार-बार उसके सामने चक्कर काटती। किस समय उसे किस वस्तु की आवश्यकता है, यह सब मीरा दो ही दिन में जान गई थी।

मीरा इस भाँति रंजन की ओर बढ़ रही थी और रंजन इस ओर से बिल्कुल अनभिज्ञ था।

मीरा की रात करवटें बदलते बीत जाती। वह अनर्निश रंजन के ही विषय में सोचा करती कि कितनी भाग्यशाली है रामी, जिसको रंजन जैसा पति मिला। क्या वह मेरा नहीं हो सकता। यदि मनुष्य प्रयत्न करे तो दुनिया का कोई काम उसके लिये असम्भव नहीं। मैं सेवा-भाव से रंजन को जीतूँगी।

ऐसा विचार मन में रख मीरा अपने नित्य नये प्रयोगों में व्यस्त हो गई।
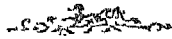
: ७ :

शुद्ध अन्तःकरण वाले व्यक्ति के पास दूषित भावनायें जा ही नहीं सकतीं। उसके मानव-जगत् में कुप्रवृत्तियों की त्रिवेणी कभी नहीं लहरा सकती। वह साधु प्रकृति का जीव होता है। आसुरी वृत्ति का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मीरा रंजन को अपने त्रिया-चरित्र और सेवा-भाव से जीतने के सतत उद्योग में लगी थी; लेकिन रंजन उसे एक आत्मीया समझकर उसके सम्पर्क में आता जा रहा था। उसे स्वप्न में भी इस बात का आभास न था कि मीरा की निगाहें उसके प्रति आकर्षित हो रही हैं।

रानी पति को मीरा से मिलते-जुलते और हँस-हँसकर बातें करते देखती तो उसके अन्तर में सन्देह की रेखा खिंच जाती। उसको रंजन पर पूरा-पूरा विश्वास था, लेकिन कभी-कभी समझदार लोग भी तो धोखा खा जाते हैं, फिर वह तो एक अबला ठहरी। उसका सन्देह धीरे-धीरे पुष्ट होता गया।

पूर्णिमा की सांझ को वारुणी का पर्व था। मीरा और रामी भी गंगा-स्नान करने गई थीं। बच्चे भी पीछे लग गये। रंजन घर में बैठे-बैठे ऊब गया था, अतः वह भी बाहर चला गया।

बाहर जाकर रंजन ने देखा कि पारसनाथ उसके घर की ओर बढ़े आ रहे हैं। वह वहीं पर खड़ा रहा और पारसनाथ घर में चले गये।

जब पारसनाथ को आध घन्टे से भी ऊपर हो गया और वे बाहर नहीं आये तो रंजन को आश्चर्य हुआ। पहले तो उसका मन हुआ कि घर जाये; लेकिन फिर यह सोचकर रह गया कि रामी स्वयं ही बतलायेगी। जाने से कोई लाभ नहीं।

रामी दिया जला रही थी कि पारसनाथ ने बाहर से आवाज दी। रामी बाहर आई और बोली—"कहिये कैसे कष्ट किया"? "रंजन कहाँ है?" पारसनाथ ने अपनी सतर्क दृष्टि से चारों तरफ देखते हुए उससे पूछा।

"वे तो बाहर गये हैं। यहीं कहीं होंगे।" रामी ने आँचल का पल्ला सुधारते हुए कहा।

"अन्दर चलो आपसे कुछ बातें करनी हैं।" कहते हुए पारसनाथ अन्दर आने लगे। दबी बिल्ली-सी रामी पीछे-पीछे चल दी।

अन्दर जाकर मोढ़े पर बैठते हुए पारसनाथ पाँच कोने का मुँह बनाकर बोले—"बेहद गर्मी है यहाँ तो बैठा नहीं जाता। कैसे रहती हो आप?"

"जिसको भगवान् ने जैसे साधन दिये हैं, वह उसी में सन्तुष्ट है।" यह कहकर उसने पास पड़ा हुआ खजूर का पंखा उठाकर पारसनाथ की ओर बढ़ा दिया।

"कहो रंजन ने कोई इन्तजाम अभी तक किया या नहीं?" विषय बदलने की गरज से पारसनाथ ने यह प्रश्न कर दिया।

"अभी तो कोई प्रबन्ध नहीं हुआ है। हमें अच्छी तरह ध्यान है।" रामी ने नम्र स्वर में कहा।

"खैर कोई जल्दी नहीं। जब आपको गुंजायश हो तब देना।"

पारसनाथ के मुँह से यह बात सुनकर रामी आश्चर्यचकित हो उठी। अभी वह एक आश्चर्य में डूबी हुई थी कि पारसनाथ ने दूसरा आश्चर्य भी उत्पन्न कर दिया। वे बोले—"उस दिन के बाद फिर आप मेरी कोठी में नहीं आईं?"

"आवश्यकता ही नहीं पड़ी।" रामी जवाब देने के साथ-ही-साथ पारसनाथ के चेहरे की बदलती हुई आकृति को भी देखती जा रही थी।

"किसी चीज-सामान की जरूरत हो तो बतला देना या स्वयं चली आना। उसमें संकोच करने की क्या आवश्यकता?-समझीं!" पारसनाथ इतना कहकर उसकी ओर देखने लगे।

रामी को अब अधिक ज्ञेय बनना न रुचा। वह स्वाभिमान भरे शब्दों में बोली—"बस यही मेहरबानी बनाये रखिये कि किराये की देर-सबेर का ख्याल न किया कीजिये। पैसा आप का रहेगा नहीं। पाई-पाई हम लोग भर देंगे।"

"ऐसी क्या बात है। यदि आप कहें तो मैं एक कौड़ी किराया न लूँ।" कहने के साथ ही मुस्कान से उन के स्थूल होंठ खिल उठे।

"क्या मतलब ?" रामी ने तनिक गरम होकर कहा।

"जान-बूझकर अनजान बनती हो। जानती नहीं कि आज-कल पैसे के लिये क्या-क्या करना पड़ता है। कहो तो मैं रंजन को कल ही अपने यहाँ नौकरी दे दूँ ?"

रामी का चेहरा पारसनाथ की अन्तिम बात सुनकर क्रोध से तमतमा उठा। वह छूटते ही बोल उठी—"बस बहुत हो चुका जैन साहब, अब आप जाइये। मैं उन स्त्रियों में से नहीं हूँ जो पैसे के पीछे अपनी लाज बेचती घूमती हैं।" इतना कहकर वह अपने कमरे में चली गई और किवाड़ बन्द कर लिये।

पारसनाथ खिसियाकर उठ खड़े हुए और यह कहते हुए बाहर चले गये—"न कुर्की करवाई तो मेरा नाम पारसनाथ नहीं।"

रामी ने पारसनाथ के जाने के बाद किवाड़ खोले और आँगन में आकर सोचने लगी कि कितना हेय प्राणी है पारसनाथ। ऐसे पापियों को भगवान् मौत भी नहीं देता। अधिक-से-अधिक यही तो कर सकता है कि मकान खाली करवा लेगा। मुझे इसकी चिन्ता नहीं। ईमान कभी खराब नहीं करना चाहिये। ऐसा लगता है कि पैसे वालों ने अपनी अलग दुनिया बसा रक्खी है। जहाँ पर हर चीज पैसे के ही बल पर खरीदी जाती है। पैसे को शायद ये लोग भगवान् का दूसरा रूप मानते हैं। अच्छा हुआ जो मैंने

उनको नहीं बताया कि मैं पारसनाथ की कोठी में गई थी। मैं तो जानती थी कि पारसनाथ भला आदमी होगा; लेकिन वह पशु से भी अधम निकला। आजकल ऐसे इन्सानों की कमी नहीं जो अपने में साक्षात् शैतान का प्रतिविम्ब लिये घूमते हैं। पारसनाथ भी इसी वर्ग का व्यक्ति है।

: ८ :

प्राय: ऐसा ही होता है कि जिस बात को मनुष्य छिपाने का प्रयत्न करता है, वह खुलकर ही रहती है। रामी विचारमग्न आँगन में बैठी थी कि रंजन आ पहुँचा। रामी को पति के आने का बोध नहीं हुआ। वह अपने ही विचारों में खोई रही। रंजन ने भी उसे नहीं टोका।

रंजन सोचने लगा—मालूम होता है पारसनाथ से और दूसरी बात क्या हो सकती है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने अपनी वक्र दृष्टि रामी की ओर उठाई हो, उसी चिन्तन में वह व्यस्त हो। पैसे वालों का क्या भरोसा। इनके लिये उचित और अनुचित सभी कुछ सम्भव है। ये लोग………।

सहसा रंजन की विचार-शृंखला टूट गई। उसकी और रामी की आँखें चार हो गईं। वह भीता हरिणी की भाँति एकदम सहम गई। तभी रंजन ने धीरे-से पूछ दिया—"पारसनाथ क्या

कह गया है ?"

रामी से यकायक कुछ भी जवाब देते नहीं बन पड़ा। वह सकपका गई और क्षण में ही पता नहीं कितना सोच डाला कि कहीं इन्होंने (रंजन) मेरी पारसनाथ की बातें सुन तो नहीं लीं हैं। मालूम होता है कि मेरा कोठी जाने वाला राज खुल गया। अब क्या करूँ ? क्या जवाब दूँ ? तत्क्षण ही वह यह भी सोचने लगी कि हो सकता है कि पारसनाथ को इन्होंने घर से निकलते देखा हो तभी……।

"तुमने कुछ जवाब नहीं दिया ?" कहकर रंजन ने उसके मनन में व्याघात डाल दिया।

तत्क्षण ही सजग होकर रामी कहने लगी—"यही पूछने आये थे कि रुपये का इन्तजाम कुछ हो रहा है या नहीं ? जब धीरे-धीरे इन्तजाम किया जायेगा तो चार-पाँच महीने में रुपया इकट्ठा हो जायेगा।"

"तुमने क्या कहा ?" रंजन ने उसी मुद्रा में पूछा।

"मैंने कह दिया कि यह आपकी मेहरबानी है जो चार-पाँच महीने की छूट दे रहे हैं। तब तक हम लोग इन्तजाम कर ही लेंगे।" कहकर रामी बाईं अनामिका पर साड़ी का एक छोर लपेटने लगी। उसकी दृष्टि नीचे थी, लेकिन कनखियों से वह रंजन की चेहरे की भावभंगी पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी।

रंजन उड़ती चिड़िया पहचानता था। वह रामी की कृत्रिमता को ताड़ गया और कुछ रूखे स्वर में बोला—"पता नहीं आज

पारसनाथ इतना उदार कैसे हो गया ?"

"ईश्वर जाने।" कह कर रामी ने अपनी सफ़ाई दे डाली।

इससे रंजन का क्रोध उबल पड़ा। वह रुष्ट होकर बोला—"ईश्वर तो जानेगा ही और क्या तुम जानने बैठोगी ?" और इतना कहने के साथ ही वह घर के बाहर निकल गया।

× × ×

बाहर जाकर रंजन बड़ी देर तक पार्क में टहलता रहा। उसके मस्तिष्क में रामी के प्रति विचारों का ज्वार उठ रहा था कि क्या रामी भी पतित हो सकती है ? यदि ऐसा नहीं तो फिर उसने मुझसे झूठ बोलने का साहस कैसे किया ? यह सत्य है कि आज वह मेरे सम्मुख सरासर झूठ बोली है।

रंजन को रामी पर इसके पहले कभी सन्देह नहीं हुआ था, लेकिन आज बिलकुल पुष्ट हो गया। उसे किसी भी भाँति सन्तोष नहीं आ रहा था। रह-रहकर स्वयं अपने-आप पर ही क्रोध आता था कि यह सब अर्थाभाव की देन है। रामी जैसी स्त्रियाँ भी जब समय की मार से विचलित हो उठीं, फिर अन्यों के लिये क्या कहा जाय ?

: ६ :

रंजन भविष्य में तरक्की करने के सपने देख रहा था कि बीच में दम्पति के दिलों में सन्देह के अंकुर उग आये। न वह कुछ रामी से ही कह पाता था और न रामी उससे। रंजन के लिये यह व्याघात असह्य हो उठा। उसने सोचा था कि अब न मैं नौकरी के लिये हैरान हूँगा और न टाइप वाले झंझट में ही पड़ूँगा। हाथों-पैरों से मेहनत करूँगा। क्या मजदूरी भी न मिलेगी मुझे?

लेकिन अब रंजन की मानो प्रज्ञा ही नष्ट हो गई थी। लगता था कि उसका कुछ खो गया है, तभी बदहवास सा रहता है। रामी उसकी स्थिति को देखकर अन्दर-ही-अन्दर घुलने लगी और वह रामी की ओर से सशंकित था कि कहीं इसको तपेदिक न हो जाय।

रामी को इस समय अपने घर में मीरा का रहना बिल्कुल न

भाता था। वह एकान्त चाहती थी। वह घन्टों एक पास बैठकर रंजन से बातें करना चाहती थी। अपने मन का गुबार उसे रोकना कठिन हो गया था। उस ने माँ से बातों-ही-बातों में ज्ञात कर लिया था कि आषाढ़ बरसते ही माँ गाँव चली जायेंगी। इस बात से उसे प्रसन्नता हुई कि चलो दस-पाँच दिन और सही। फिर तो मीरा माँ के साथ चली ही जायेगी।

किन्तु जब आषाढ़ का पहला पानी हुआ और रामी की माँ ने मीरा से गाँव चलने को कहा तो मीरा ने यह कहकर टाल दिया—"अरे अभी तो पहला पानी हुआ है। चार-छः दिन और देख लो। फिर चलूँगी। ऐसी जल्दी क्या है ?"

इसके बाद एक दिन जब खूब मूसलधार वर्षा हो रही थी तब रंजन पार्क में था और मीरा बाहर के कमरे में खड़ी उसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। रामी, माँ और बच्चे दूसरे कमरे में थे। यह अवसर उपयुक्त देखकर मीरा इस आशा से बाहर वाले कमरे में गई थी कि पार्क से भीगता हुआ रंजन आयेगा, तो एकान्त में उससे कुछ बातें करूँगी।

रंजन काफी तेजी से भागा, फिर भी दरवाजे तक पहुँचते-पहुँचते वह बहुत भीग गया। मीरा खिड़की से आते हुए उसको देख रही थी। जल्दी से कुन्डी खोलकर आगे आ रास्ता रोककर खड़ी हो गई।

रंजन ने कुन्डी बन्द की और फिर सामने मार्ग में खड़ी मीरा की ओर देखने लगा। वह कुछ कहना ही चाहता था कि

मीरा स्वयं बोल उठी—"तुमसे कुछ कहना है।" और यह कहकर वह उसके निकट आ खड़ी हो गई।

रंजन के आश्चर्य का पारावार न रहा कि आज मीरा को हो क्या गया है। दूसरे जोड़ कपड़े थे ही नहीं उसके पास जिन्हें बदलने के लिये दूसरे कमरे में जाता। अतः वह वहीं पर खड़े-खड़े अपनी धोती और कमीज़ निचोड़ने लगा। मीरा बुत बनी खड़ी थी। उसकी ओर बिना देखे ही रंजन ने धीरे से कहा—"हाँ, क्या कहना है तुम्हें ?"

"मैं गाँव नहीं जाना चाहती हूँ। मेरे खेत बटाई पर उठे हुए हैं। बोलो तुम क्या कहते हो ? रहूँ या जाऊँ ?"

मीरा के ये शब्द रंजन को ऐसे लगे, मानो कोई स्त्री अपने पति से अनुरोध कर रही हो। वह एकदम चौंक उठा और सोचने लगा कि मीरा का ऐसा साहस कैसे हुआ ? क्या यह हमारे दाम्पत्य जीवन के मध्य तीसरा रोड़ा बनना चाहती है ? वह उपेक्षा-पूर्वक बोला—"मैं क्या बताऊँ ? रामी से पूछो वह क्या कहती है।" यह कहकर वह जाने को उद्यत हुआ, लेकिन मीरा ने आगे बढ़कर उस की कमीज पकड़ ली। विवश रंजन को रुक जाना पड़ा।

"तुम्हीं कहोगे तभी मैं जाऊँगी। नहीं तो सबसे कह दूँगी कि जीजा (रंजन) ने मुझे मना किया है।" यह कहकर वह मुस्करा दी।

रंजन को मीरा का यह व्यापार बहुत खला। उसके क्रोध

की सीमा न रही। वह झटका देकर अपनी कमीज़ छुड़ा रामी के कमरे में चला गया और मीरा खड़ी-खड़ी देर तक खिसियाती रही।

× × ×

रंजन कपड़े उतार बदन में तौलिया लपेट पलँग पर चादर ओढ़ कर पड़ रहा। रामी ने पूछा तो कह दिया—"अभी बात न करो मुझसे। आँधी चल रही है न और मैं बुरी तरह से भीग गया हूँ। इसी से जाड़ा लग रहा है।"

लेकिन वास्तविकता कुछ और ही थी। उसका मस्तिष्क भन-भना रहा था। आज मीरा का असली रूप देखकर उसकी आँखें खुल गई थीं। वह सोच रहा था कि क्या नारी यहाँ तक पतित हो सकती है। शायद मीरा की आँख का पानी मर गया है, संकोच खो गया है और लाज के डोरे टूट गये हैं।

आज रंजन की समझ में आया कि पाप स्त्री-पुरुष दोनों की ओर से लगभग बराबर ही होते हैं। कहीं नारी कुलटा है तो कहीं पुरुष कामलोलुप। वह सोचने लगा कि आज के युग में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि घरेलू स्त्रियाँ पुरुषों के साथ बेहयायी करने लगीं।

रंजन ने मन-ही-मन तय किया कि मीरा के सम्बन्ध में वह रामी से कुछ भी नहीं कहेगा और मीरा से बहुत कम बात करेगा। चाहता तो वह था कि बिल्कुल उससे रुख ही न मिलावे, लेकिन इससे रामी को सन्देह हो सकता था।

और मीरा को उस रात कोरी आँखों ही सवेरा हो गया। वह सोचती रही कि मैं नहीं जानती थी कि रंजन का हृदय इतना कठोर है। उसने मुझे ठुकरा दिया। गाँव में लोग मेरे पीछे जान देते हैं और यह अपने को बहुत कुछ समझता है। मैं इसका दर्प चूर करके ही जाऊँगी यहाँ से। यह दृढ़ निश्चय है। मैं कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हूँ। मिडिल योंही नहीं पास हो गई। पढ़ी-लिखी रामी भी है। लेकिन रंजन को यह नहीं भूलना चाहिये कि मैं रामी जैसी नहीं, मेरा नाम मीरा है।

इस भाँति मीरा अपनी विद्रोही भावनाओं के ताने-बाने में जुटी रही। नारी अपना अपमान सहकर जीवित नहीं रहती। वह बदला अवश्य लेती है। ऐसी बातें सोच रही थी मीरा। वह रंजन को किसी-न-किसी भाँति पराजित करना चाहती थी। उसी युक्ति के मनन में लगी थी। इसके अतिरिक्त उसके पास और कोई दूसरा काम न था।

: १० :

रंजन के घर में खच की त्राहि-त्राहि मच रही थी। श्रीलाल, रामी की माँ और मीरा सभी लोग जान गये कि कल बाजार में रामी का अन्तिम आभूषण टीका भी बिक गया।

इस समय रंजन की स्थिति बड़ी चिन्त्य थी। रामी की बीमारी तो जैसे एक राजरोग हो गई थी। दो दिन वह अच्छी रहती फिर पान-फूल की भाँति कुम्हला जाती। रंजन उसको मुरझाया हुआ नहीं देखना चाहता था।

श्रीलाल ने उस दिन रात को चौक-सराफे में रंजन को टीका बेचते देखा था। तभी से वे समझ गये कि मालूम होता है कल रंजन लोटा और थाली भी आकर बाजार में बेचेगा। एक ओर तो वे रंजन की परिस्थिति पर मन-ही-मन दुखी हो रहे थे और दूसरी ओर रामी उनका केन्द्र-बिन्दु बनी हुई थी। दूसरे ही क्षण वे सोचने लगे कि यह मौका अच्छा है। कुछ रुपये से रामी की

मदद की जा सकती है। फिर तो वह पानी-पानी हो जायेगी।

सन्ध्या-समय आसमान में काले-काले बादल छाये थे। हवा एकदम बन्द थी। उमस प्राबल्य की ओर अग्रसर हो रही थी। ऐसा लगता था कि दम घुटा जा रहा है। रंजन बच्चों को लेकर बाहर टहलने निकल गया; क्योंकि मारे गर्मी के घर में चैन नहीं पड़ रही थी। रामी की माँ और मीरा छत पर चली गईं। वे लोग रामी को भी बुलाती रहीं; मगर वह आलस किये पड़ी रही, उठी ही नहीं।

श्रीलाल ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया और आते ही रामी की मधुर भर्त्सना करते हुए बोले—"इतनी गर्मी है और तुम अन्दर पड़ी हो। कमरे में अँधेरा हो रहा है, दिया तक नहीं जलाया। घर के और लोग सब कहाँ चले गये?" कहकर वे इधर उधर देखने लगे।

रामी शरमा गई। वह जल्दी से उठी और दिया जलाते-जलाते बोली—"वे तो बच्चों को लेकर बाहर गये हैं और माँ वगैरह सब छत पर हैं।"

इसके बाद उसने आँगन में लाकर मोढ़ा डाल दिया और उसके निकट ही एक बोरा बिछाकर बैठ गई। श्रीलाल आकर मोढ़े पर बैठते हुए उसकी ओर उन्मुख होकर बोले—"टीका कितने का बिका है कल? यह······।"

"टीका।" रामी एकदम चौंक उठी।

"वह सोहाग की चीज है। उसको बाजार से वापस मँगवा

लो। ये लो रुपये।" कहकर श्रीलाल ने रामी की ओर दस-दस रुपये के दस नोट बढ़ा दिये।

अब रामी समझ गई कि श्रीलाल को भी टीका बिकने का पता चल गया है। इसलिये उसने कोई तर्क नहीं किया। सीधे स्वभाव रुपये लौटाती हुई बोली—"आप रुपये रखिये। अभी तो काम चल ही रहा है, जब आवश्यकता होगी तो कह दूँगी।"

"देखो रामी संकोच न करो। शायद तुम रंजन से डरती हो। उससे डरने की क्या बात है ? कह देना कि रुपये मैंने दिये हैं, बाजार से जाकर टीका वापस ले आयें।" यह कहकर श्रीलाल ने उसके संकोच और झिझक को परास्त करने की कोशिश की।

लेकिन रामी ने रुपयों को छुआ भी नहीं। वह अत्यन्त मृदुल स्वर में बोली—"डाक्टर साहब ! क्या आप नहीं जानते कि जितना भाग्य में बदा होता है, उससे एक रत्ती न कम मिल सकता है और न अधिक। एक दिन मोती चुगने से क्या लाभ, जब नित्य ही तालाब की मिट्टी खानी है। रुपये आप लेते जाइये। हम लोग सहारा नहीं चाहते; क्योंकि सहारा ही आदमी की सबसे बड़ी दुर्बलता है। क्षमा कीजियेगा, कहीं आप मेरी बातों को दूसरे रूप में न समझ लें।"

रामी के इस लम्बे-चौड़े प्रवचन का श्रीलाल पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने उस समय वहां से टल जाना ही अच्छा समझा।

रामी ने जब देखा कि श्रीलाल कुछ बोल ही नहीं रहे हैं तो वह कहने लगी—"शायद आप मेरी बातों को बुरा मान गये ?"

"नहीं, नहीं, मैं बुरा क्यों मानने लगा।" कहने के साथ ही वे उठ खड़े हुए और जल्दी से बाहर निकल आये।

रुपये रामी के सामने अब भी पड़े थे और वह उनकी ओर ऐसे देख रही थी, मानो बिच्छुओं और सर्पों को देख रही हो। वह सोचने लगी—मालूम होता है श्रीलाल मेरे सतीत्व का यह बयाना दे गये हैं। बाकी भुगतान बाद में होगा। कितनी मदान्ध और स्वार्थपरायण है यह दुनिया ! आज ·····।

उसकी विचार-धारा टूट गई; क्योंकि रंजन सामने आकर मोढ़े पर बैठ गया था। दोनों बच्चे उसके गले से आकर लिपट गये थे। रंजन ने नोटों को उठाते हुए कहा—"यह क्या ?"

"श्रीलाल दे गये हैं ?"

रामी के मुँह से इतना सुनते ही रंजन बिगड़ उठा। वह बोला—"और तुमने ले लिये ?"

"ले नहीं लिये, वे जबरदस्ती डालकर चले गये हैं।" रामी ने अपना पक्ष सबल कर दिया।

"क्यों ? " रंजन ने तनिक गम्भीर होकर पूछा।

उत्तर में रामी ने सब आद्योपान्त बता दिया। रंजन को श्रीलाल पर बड़ा विश्वास था। इसलिये उसके मन में श्रीलाल के प्रति पाप नहीं आया। यद्यपि रामी को श्रीलाल के विचार अच्छे नहीं मालूम देते थे, लेकिन उसने रंजन से कभी इसकी चर्चा ही नहीं

चलाई और रंजन को श्रीलाल पर किसी भाँति भी सन्देह नहीं हो सकता था।

दूसरे दिन प्रातः जब श्रीलाल रामी को देखने आये तो रंजन ने उन के कुरते की जेब में वे नोट डाल दिये और गद्गद कण्ठ से बोला—"तुम्हारा ही तो मुझे भरोसा है श्रीलाल। आज के जमाने में कौन पूछता है किसको। लेकिन अभी ये रुपये रख लो जरूरत पड़ने पर माँग लूँगा।"

श्रीलाल ने नोट निकालकर रामी की चारपाई पर डाल दिये और रंजन पर कृत्रिम रोब जमाते हुए बोले—"आप जल्दी से जाकर टीका लाइये। ये फिजूल की बातें तो बाद में भी होती रहेंगी।" और इतना कहने के साथ ही वे जल्दी से बाहर निकल गये। रंजन उन्हें बुलाता ही रह गया।

× × ×

अपने पति की गाढ़ी कमाई का एक पैसा भी स्त्री के लिए सोना होता है; किन्तु दूसरे पुरुष का सोना छूना भी वह पाप समझती है। यद्यपि रंजन ने श्रीलाल वाले रुपये रख लिये थे और रामी का टीका भी वापस ले आया था; लेकिन न जाने क्यों रामी को यह सब बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। उसका हृदय कचोटने लग गया था।

रामी अब श्रीलाल से जितनी दूर रहना चाहती थी, रंजन उतना ही उसके निकट सम्पर्क में आता जा रहा था। रामी को यह कभी सह्य नहीं था कि रंजन श्रीलाल के साथ-साथ डोलत

फिरे; मगर वह कुछ कह नहीं पाती। समाई का घूँट पीकर रह जाती।

रंजन को श्रीलाल और उनके मित्र राठी ने यह प्रलोभन दे रक्खा था कि कहीं-न-कहीं वे लोग उसे काम दिलवा देंगे, जो नौकरी न होकर कमीशन पर निर्भर होगा। घर का खर्च अभी आराम से चल ही रहा था। अतः रंजन भी नित्य श्रीलाल के साथ राठी साहब के यहाँ जाने लगा।

रात को घन्टों राठी और श्रीलाल शतरंज खेला करते तो रंजन भी उसमें दिलचस्पी लेता। और यदि घूमने निकल गये तो तीनों व्यक्ति घन्टों टहला करते। कभी सिनेमा देखना, होटल में खाना और कभी शहर के बाहर घूमने निकल जाना, यह इन तीनों व्यक्तियों का नित्य का व्यापार बन गया था।

रंजन श्रीलाल और राठी के सम्पर्क में आकर अपनी चिन्तायें भूलने लगा। उसे ऐसा लगता था कि किसी ने उसके सिर पर से नौ मन का बोझ उतार लिया है। वह अब प्रसन्न रहता था।

मगर स्त्री ही पति की सच्ची हितैषिन होती है। रामी किसी भी भाँति रंजन को अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होने देना चाहती थी। वह रंजन को एकान्त में बैठकर समझाना चाहती थी; लेकिन मीरा छाती पर का पीपल बनी बैठी थी। रामी की माँ तो गाँव जाने की जल्दी मचा रही थी और वह टस-से-मस नहीं हो रही थी।

: ११ :

जिस प्रकार कोई ग्रामीण नगर में आकर कुछ दिनों में नागरिक जीवन का अभ्यस्त हो जाता है, ठीक वैसे ही रंजन भी राठी और श्रीलाल के सम्पर्क में आ उन्हीं जैसा बनता जा रहा था।

एक दिन रात को राठी साहब एक कालेज गर्ल के यहाँ गये। उसका नाम कस्तूरी था। श्रीलाल ने हठ करके उस दिन रंजन को भी अपने साथ ले लिया।

रंजन की समझ में कुछ भी नहीं आया कि यह लड़की कौन है और ये लोग यहाँ क्यों आये हैं। वह मन-ही-मन स्वयं अपने से ही तर्क करने लगा। उसने यह भी देखा था कि बाहर बैठक में एक प्रौढ़ सज्जन कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे, उनसे राठी साहब और श्रीलाल की दुआ-बन्दगी हुई थी।

रंजन आश्चर्य में डूबा हुआ था कि श्रीलाल ने उसका कंधा हिलाते हुए कहा—"बी० ए० प्रीवियस में पढ़ रही हैं। नाम है

कस्तूरी।" और यह कहकर वे कस्तूरी की ओर देखने लगे।

कस्तूरी ने रंजन को नमस्ते किया। उसने भी उत्तर में दोनों हाथ ऊपर उठा दिये।

रंजन नीची निगाह से कस्तूरी को निहारने लगा। कस्तूरी का रँग पक्का था। शरीर खूब गठा हुआ और आँखें सुडौल थीं। वह सत्रह-अट्ठारह वर्ष की युवती थी। काली कन्नी की श्वेत धोती और श्वेत मलमल का ब्लाउज पहने वह सामने दरी पर बैठी थी। उसकी मुद्रा से ऐसा लग रहा था कि वह चिन्तामग्न है।

राठी साहब ने जेब से हीवेट्स ह्विसकी की सीलबन्द शीशी निकाली। कस्तूरी आशय समझ तीन शीशे के गिलास उठा लाई और फिर थर्मस में से थोड़ी सी बर्फ निकाल कूटकर तीनों गिलासों में बराबर-बराबर डाल दी। राठी साहब ने दो-दो पैग ह्विसकी तीनों गिलासों में डाली और कस्तूरी ने थोड़ा-थोड़ा पानी ऊपर से छोड़ दिया। फिर सिगरेट की डिब्बी खोल सबको एक-एक सिगरेट दे वे बोले—"हाँ भाई अब पियो।"

श्रीलाल ने तो गिलास उठा लिया, लेकिन रंजन सिगरेट का एक कश खींच कुछ सोचने लगा। सिगरेट पीना तो खैर उसके लिये कोई नया काम नहीं था; क्योंकि कालेज में अक्सर लड़कों को इस का शौक पड़ जाता है। लेकिन शराब आज तक उसने अपने हाथ से नहीं छुई थी। उस की हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह उस ओर देखे भी।

राठी साहब ने आग्रह किया और श्रीलाल ने जबरदस्ती रंजन

के हाथ में गिलास उठाकर पकड़ा दिया।

"मैं शराब नहीं पिऊँगा।" रंजन ने अपनी विवशता दिखलाई।

"निरे बुजदिल ही हो यार।" श्रीलाल ने यह कहा।

और तभी राठी साहब कहने लगे—"शराब मर्दाना नशा होती है। एक घूँट हलक के नीचे उतरा नहीं, फिर देखो कैसा आनन्द आता है। बिचको न रंजन। शुरू-शुरू में सब यही कहते हैं।" और इतना कहने के साथ ही उन्होंने गिलास रंजन के होठों से लगा दिया।

शराब की भभक रंजन के नथुनों में भर गई और उसने गिलास हटा दिया। तब उसमें थोड़ा सा पानी और डालकर उसके मुँह से लगाते हुए श्रीलाल बोले—"तुम्हें मेरी कसम है रंजन पी लो। नहीं तो फिर मैं कभी तुमसे बात न करूँगा।"

विवश रंजन को पहला घूँट पीना पड़ा। उससे उसे ऐसा लगा, मानो किसी ने चाकू से भीतर-ही-भीतर पेट को चीर दिया है। फिर उसकी हिम्मत टूटी और राठी साहब ने प्रोत्साहन दिया—"आँखें मीचकर पी जाओ। क्या तमशा करते हो रंजन?"

रंजन ने श्रीलाल की ओर देखा। वे भी उसको बाढ़ पर रखते हुए बोले—"देखते क्या हो? पी जाओ।"

रंजन को कायली लग रही थी, अतः वह आँखें मूँदकर हिम्मत के साथ सब पी गया। साथ ही राठी और श्रीलाल के

भी गिलास खाली हो गये थे। सिगरेटों के कश-पर-कश खींचे जा रहे थे, जिस से धुएँ के बादल ऊपर कमरे की छत तक छा रहे थे। सीलिंग फ़ैन उनको छिन्न करने में व्यस्त था। कस्तूरी उन्हीं छल्लेदार धुएँ के बादलों को देख रही थी कि राठी साहब ने उसका ध्यान भंग करते हुए अनुरोध किया—"आज तुम भी थोड़ी सी पियो कस्तूरी। रोज तो इन्कार कर देती हो, लेकिन आज तुम्हारी ज़िद नहीं चलेगी।"

कस्तूरी समझ गई कि राठी साहब पर सुरा का प्रभाव होने लगा है। उसने कुछ जवाब ही नहीं दिया। तब तक राठी साहब ने एक-एक पैग तीनों गिलासों में फिर डाल दी।

अब रंजन भी नशे में आ गया था। उसने भी सब के साथ एक पैग और पी लिया।

श्रीलाल ने कस्तूरी से रंजन की ओर इंगित करते हुए कहा—"ये मेरे मित्र हैं रंजन कुमार। अब ये भी यहाँ आया करेंगे।"

कस्तूरी ने कोई जवाब नहीं। केवल उसने हाँ द्योतक सिर हिला दिया।

तीनों मित्र बड़ी देर तक बैठे वहाँ पर मनोविनोद करते रहे। फिर उठकर श्रीलाल की कार पर बैठ अपने-अपने घरों को चले गये।

× × ×

रंजन शराब के नशे में झूमता हुआ घर आया। उसके मुँह से अब तक शराब की गन्ध आ रही थी। रामी सब समझ गई।

लेकिन उसने उस समय कुछ भी कहना उचित नहीं समझा। सामने माँ और मीरा खड़ी थीं यह देख रामी की गर्दन शर्म से झुकी जा रही थी। रंजन नशे की झोंक में अनर्गल प्रलाप कर रहा था। रामी जल्दी से उसे छत पर लिवा ले गई और चारपाई पर लेटा दिया। उसके थोड़ी देर बाद वह नीचे उतर आई और माथे पर जोर से हाथ मारकर अपनी तकदीर को ठोकती हुई कमरे में जा सिसक-सिसक रोने लगी।

द्वितीय खण्ड
'पतवार'

: ९ :
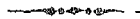
धूर्त प्रकृति के व्यक्ति हमेशा अवसर की ताक में रहते हैं। किसी-न-किसी प्रकार वे अपना वांछित कार्य पूरा ही कर लेते हैं। रामी क्रोध के कारण पति के पास नहीं बैठी। वह घन्टों चारपाई पर पड़ी रोती रही। और जब माँ भी सो गई तो मीरा मौका उपयुक्त देखकर छत पर रंजन के पास पहुँच गई। ज्ञानावस्था में तो रंजन ने मीरा को दुतकार दिया था; लेकिन इस अज्ञानावस्था में मीरा ने उसपर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा लिया।

जब मीरा रात ढले धीरे-धीरे दबे पाँव जीने से नीचे उतर रही थी, तो सहसा रामी की दृष्टि उस पर पड़ गई। रामी सोचने लगी कि मीरा कितनी नीच और निर्लज्ज स्त्री है जो परपुरुष को सहज ही अपना आत्म-समर्पण कर देती है।

और रंजन की जब सवेरे आँख खुली, तो उसका गला प्यास से सूख रहा था, नथुनों में खुश्की के कारण पपड़ी पड़ गई थी

और सिर में दर्द हो रहा था। अब उसे कल पीने के पहले बातें याद आईं। लेकिन कब मीरा उसके पास आई और कब गई, इसका उसे बिल्कुल बोध नहीं था। वह किस प्रकार और कब घर आया, यह भी उसे याद न था। वह कल की भूल के लिये पछता रहा था। रामी के सामने जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी।

रंजन छत पर ही पड़ा-पड़ा सोच रहा था कि राठी और श्रीलाल अच्छे आदमी नहीं हैं। मुझे उनका साथ छोड़ देना चाहिये। कल मैंने शराब क्यों पी ली? आखिर कैसे आ गया मैं राठी और श्रीलाल की बातों में? कस्तूरी भी अच्छी लड़की नहीं है। वह फाहिशा है। मुझे उसके यहाँ भी नहीं जाना चाहिये था।

रामी की माँ और मीरा भी कल समझ गई होंगी कि मैं शराब पीकर आया हूँ। इस बात से रंजन को अत्यधिक ग्लानि हो रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि जो नीच कर्म उसने कल कर डाला है, इसके लिए ईश्वर भी उसे क्षमा न करेगा। वह कैसे अब नीचे जाय और कैसे सबको अपना मुँह दिखलाये? उसे यह आभास हो रहा था कि किसी ने उसके मुँह पर कालिख पोत दी है।

इस तरह रंजन स्वयं अपने में ही हैरान था। किसी भी भाँति उसे सन्तोष नहीं मिल रहा था। छत पर काफी धूप फैल गई थी और वह उठने का नाम नहीं ले रहा था। उसने यह बिल्कुल दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अब भविष्य में वह राठी और श्रीलाल का न साथ करेगा और न उनके साथ कहीं घूमने-फिरने ही जायेगा।

वह अपनी उधेड़-बुन में व्यस्त तब तक धूप में ही पड़ा रहा, जब तक रामी उसे उठाने नहीं आई। उसका अनुमान था कि रामी आते ही बिगड़ेगी। लेकिन रामी ने उससे इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा। इससे रंजन की आँखें पत्नी की ओर न उठ सकीं और वह सिर झुकाये धीरे-धीरे जीने से नीचे उतरने लगा।

: २ :

रामी स्वस्थ तो हो आई थी; किन्तु अभी उसके चेहरे पर कान्ति नहीं थी। फिर भी वह देखने में रूप की अप्सरा मालूम होती थी। दुनिया में दो प्रकार की सुन्दर स्त्रियाँ होती हैं एक सुन्दर और एक अतिसुन्दर। रामी की खूबसूरती अद्वितीय थी। उसकी रूप-राशि फूटी पड़ती थी, छवि निखरी पड़ती थी। यही कारण था कि श्रीलाल और पारसनाथ उसकी रुग्णावस्था होने पर भी उसकी ओर आकर्षित हो आये।

ज्वर ने रामी का पीछा छोड़ दिया था। श्रीलाल इलाज चालू रखना चाहते थे, लेकिन वह अब दवा खाते-खाते ऊब गई थी। दिन-रात गृहस्थी के कामों में व्यस्त रहती। मीरा और माँ को काटा-खर भी नहीं छूने देती। न जाने क्या हो गया था उसको। अपने शरीर की तनिक भी परवाह नहीं करती। ऐसा लगता था, मानो उसको अपने शरीर से उपेक्षा हो गई हो।

रंजन को ऐसा लगता था कि रामी का अधिकतर मौन रहना और शक्ति के बाहर काम करना ही एक दिन उसके अन्त का कारण होगा। यदि ऐसा न हुआ तो वह पागल हो जायेगी। वह गुनहगार स्वयं था, इसीलिये उससे कारण पूछने की हिम्मत न पड़ती थी। वह जानता था कि रामी उसके प्रश्न का उत्तर अपने प्रश्न के रूप में देगी। इसीलिये साधारण बातों के अतिरिक्त दम्पति में कभी बैठकर घन्टों बातें न हुईं। गुत्थियाँ सुलझी नहीं, बल्कि और उलझती ही गईं।। वह रामी से बात करने के लिये मन करता; लेकिन मन का चोर उसे आगे नहीं बढ़ने देता। किंकर्तव्यविमूढ़-सा वह सोचता ही रह जाता, कुछ कर नहीं पाता।

रामी के घर का वातावरण ही उसके अस्वस्थ बने रहने का एकमात्र कारण था। मीरा की ओर से उसका सन्देह रंजन पर दिन-दूना और रात-चौगुना पुष्ट होता जा रहा था। इसके अतिरिक्त उसको श्रीलाल का साथ बिल्कुल पसन्द न था। वह यह भी नहीं चाहती थी कि उसका पति शराब पिये। इन सब बातों के अलावा सबसे बड़ी समस्या उसके सामने गृहस्थी वाली थी। कच्ची गृहस्थी थी और आमदनी का कोई मार्ग नहीं। जब इतनी बाधायें उस पर एक साथ आ जुटी थीं, फिर भला वह पहले जैसी तन्दुरुस्ती कैसे पा सकती थी।

रामी स्वयं अपने शरीर पर झेल ले गई, लेकिन कभी पति से किसी बात की शिकायत न की। वह योग्य थी; क्योंकि रंजन

ने उसे इंगलिश और हिन्दी का अच्छा ज्ञान करा दिया था। विद्या पाकर वह गम्भीर हो गई थी। उसने कभी किसी काम के लिये रंजन को रोका भी नहीं। मौन ही उसका रोग था।

घर में जब कभी बाहर के कदम आकर टिक जाते हैं, तो घर की श्री फीकी पड़ जाती है और वातावरण में अशान्ति का समावेश हो जाता है। मीरा ने दम्पति के बीच में भेद की दीवाल खड़ी कर दी और फिर भी अभी जाने का नाम नहीं ले रही थी। रामी की माँ रोज-रोज उससे चलने को कहतीं, लेकिन वह टालमटोल कर जाती।

रामी को अब मीरा फूटी आँखों न भाती थी। उसके मन में कई बार आया कि मीरा से कह दे—अब तुम जाओ। मुझे तुम्हारा यहाँ रहना पसंद नहीं है। लेकिन वह अशिष्ट न थी। इसीलिये ऐसा नहीं कर सकी।

दिन आगे बढ़ रहे थे और रामी के दाम्पत्य जीवन में अंगारे बरस रहे थे। जिनकी ताप से वह झुलसी जा रही थी।

और रंजन का एकान्तवास चलता रहा था कि भावी के गर्भ में तूफान पल रहा है।

: ३ :

स्वाभिमानी आदमी कभी खुशामद का आदान-प्रदान नहीं पसन्द करता और न उसकी रुचि निःस्वार्थ सहायता पाने की ही रहती। स्वाभिमान ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। उसको खोकर वह सुख की नींद नहीं सो सकता। वह चने चबा लेगा; लेकिन एहसान करके दिये गए दूध-मलाई की ओर आँख उठाकर देखेगा भी नहीं। रंजन के स्वाभिमान को उस दिन इतना धक्का नहीं लगा, जब श्रीलाल सौ रुपये दे गये थे। उसने भी यह सोचकर रख लिये कि चलो ऋण के ही तौर पर सही। काम मिलते ही दो महीने में निकाल दूँगा। लेकिन आज उसका स्वाभिमान केवल श्रीलाल के ही कारण स्त्री के सम्मुख अपनी दुम दाब रहा था।

रंजन ने मन-ही-मन तय कर लिया था कि अब वह कभी भूल से भी राठी और श्रीलाल का साथ न करेगा। उसे कमीशन

एजेन्ट बनने का लोभ नहीं। वह मजदूरी करेगा।

प्रातः होते ही रंजन अपने मन्तव्य पर पहुँच गया। नई बस्ती में कई मकान बन रहे थे। वहाँ उसने मजदूरी कर ली। वह तो कहो मैले कपड़े पहनकर गया था, नहीं तो कोई उसे मजदूरी देता, उल्टी हँसी होती। नीचे से एक साथ दस-दस ईटें सिर पर रख कर उपर तीसरी मंजिल पर पहुँचाना। दो जीने चढ़ने पड़ते थे। रंजन के पैर भर गये और ऐसा लगता कि जाँघें कटी पड़ रही हैं। फिर भी वह मजदूरी करता था और शाम को दो रुपये ले जाकर रामी के हाथ पर रख देता।

रामी सब जानती थी कि उसका पति आजकल ईंट और गारा ढोता है। लेकिन उसका मौन अब भी टूटने में नहीं आ रहा था।

मजदूरी और नौकरी में केवल यही तो अन्तर है कि नौकरी कुछ दिन के लिये तो स्थायी होती है और मजदूरी आज मिली और कल फुरसत। चार-पाँच दिन के बाद कई मजदूर कम कर दिये गये। रंजन भी बेकार हो गया।

एक दिन, दो दिन वह ऐसे ही कई दिन भटका, लेकिन मजदूरी न मिली। तब हार मानकर शहर से बाहर गया, जहाँ सड़क की मरम्मत हो रही थी। भाग्यवश वहाँ दूरमट चलाने का काम मिल गया। मजदूरी केवल बीस आने रोज की ही थी।

घर में रामी के अलावा और कोई नहीं जानता था कि रंजन मजदूरी करके रुपये लाता है। ऐसा लगता था कि रंजन पर इस

समय दैव ही रूठा था। दो दिन बाद ही टूमट चलाने वाला काम भी समाप्त हो गया। तब वह फिर भटकने लगा। एक सड़क पर पत्थर फोड़े जा रहे थे। डेढ़ रुपये रोज की मजदूरी थी। वह वहीं पर लग गया। यह काम उसका कई दिन चला। हाथों में हथौड़ा चलाते-चलाते छाले पड़ गये थे। रामी नित्य देखती और मन-ही-मन रोकर रह जाती।

स्त्री और सब कुछ देख सकती है, लेकिन पति को तकलीफ में नहीं देख सकती। रामी का हृदय टूक-टूक हुआ जा रहा था पति के हाथों में छाले पड़े देखकर। अब उसमें समाई की ताकत न रह गई थी। आखिर उसने एक दिन पूछ ही तो दिया—"क्या आजकल रोड़े फोड़ते हो? हाथों में ये छाले कैसे पड़े हैं?"

रंजन मौन रहा। जवाब देना तो दूर रहा वह वहाँ से चला गया। रामी उसकी ओर देखती रह गई।

मीरा ने रामी को रंजन से यह पूछते हुए सुन लिया था कि क्या आजकल रोड़े फोड़ते हो। वह सोचने लगी कि रंजन अपने परिवार के लिये कितना कष्ट उठा रहा है। क्या मैं उसके किसी काम नहीं आ सकती?

मीरा को रंजन से सच्चा अनुराग हो गया था। वह अब अतीत के रास्तों पर चलना बिलकुल नहीं पसन्द करती थी। रंजन को देखकर जीते रहने की उसकी लालसा थी। अब वह उस दिन की भाँति रंजन के प्रति उग्र न थी। वह उससे पूर्णतया सन्तुष्ट

थी न जाने कितनी श्रद्धा उमड़ी पड़ रही थी उसको रंजन पर। वह बावरी हो गई थी।

दूसरे दिन सवेरे जब रंजन काम पर जाने लगा तो मीरा उसके पीछे लग गई। बाहर वाले कमरे में चौखट के पास जा उसने रंजन की कमीज पीछे से पकड़ ली और जब रंजन चौंक-कर उसकी ओर देखने लगा, तो दूसरे हाथ से अपना हार उतार कर उसको देती हुई रुआसी होकर बोली—"इसे लिये जाओ। बाजार में बेच देना। तुम्हें भगवान् की शपथ है कि अब सड़क पर रोड़े फोड़ने न जाना।"

रंजन ने मीरा की ओर देखा और फिर घृणा से मुँह फेर लिया। मीरा ने हार उसकी जेब में डाल दिया। रंजन उससे बात भी करना पसन्द न करता था। उसने हार निकाल कर फेंक दिया और बलात् अपनी कमीज छुड़ा नाक-भौं सिकोड़ता हुआ वहाँ से चला गया।

रास्ते में रंजन सोचता जा रहा था कि मीरा मुझ पर अह-सान का बोझ लादना चाहती थी। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि स्त्री जाति स्वभाव से ही कृपण होती है। मीरा इतनी उदार क्यों बन गई? यह भी मैं भली भाँति जानता हूँ।

रंजन को न जाने इस समय कैसा लग रहा था। वह सोचने लगा—क्या मैं इतना हेय हो गया हूँ कि दूसरे मुझे अहसान के बोझ से लादकर जलील करना चाहते हैं। क्या मुझ में पुरुषार्थ

रहा ? क्या मैं इन्सान नहीं ? फिर क्यों किसी के सामने हाथ पसारू ? एक दिन घूरे के भी दिन बहुरते हैं, तो क्या मेरा समय हमेशा ऐसा ही बना रहेगा ? इस प्रकार वह स्वयं अपने-आपसे ही तर्क करने में व्यस्त था। वह सीना तानकर चलने का अभ्यस्त था फिर बिल्ली बनकर कैसे रह सकता था।
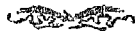
: ४ :

रामी का इलाज बन्द हो चुका था। अब श्रीलाल के सम्मुख कोई अन्य उपयुक्त मार्ग न था रंजन के घर जाने के लिये। फिर भी वे दुनियादारी के नाते दूसरे-तीसरे दिन बराबर रंजन के घर जाते रहते। कभी-कभी रंजन से भी भेंट हो जाती। लेकिन वह अब श्रीलाल से दूर-ही-दूर रहता। उसे किसी भी शर्त पर श्रीलाल का साथ पसन्द न था।

इधर रामी की माँ को शहर आये एक महीने से अधिक हो गया था। आषाढ़ खूब जोरों से बरस रहा था। वे गाँव जाना चाहती थीं, अतः विवश होकर मीरा को भी उनके साथ जाना पड़ा।

रंजन को कोई काम नहीं मिला तो वह हार मानकर स्टेशन पर जा कुली का काम करने लगा। इस प्रकार रात तक उसकी डेढ़ या दो रुपये के लगभग मजदूरी हो जाया करती।

पारसनाथ जैन जिस दिन रामी को धमकी देकर आये थे, उस दिन से वे एकदम मौन हो गये। पन्द्रह-सोलह दिन के बाद एक दिन वे पुनः रामी के पास आये। रंजन उस समय घर में नहीं था। पारसनाथ निस्संकोच अन्दर चलते चले आये और रामी से फिर वही पुरानी बात दुहराई कि रुपये का कुछ प्रबन्ध हुआ या नहीं? उनके इस प्रश्न पर रामी ने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि कल सवेरे ही हम लोगों को यह मकान छोड़ देना है। यह सोचकर उसने पारसनाथ से कह दिया—"कल सवेरे आकर आप अपना रुपया ले जाइये।"

पारसनाथ के आश्चर्य की सीमा न रही कि इतनी जल्दी रुपये का इन्तजाम कहाँ से हो गया? वे बात को जानने के लिये उसकी दूसरी रूपरेखा बनाकर बोले—"कितना रुपया दोगी कल सवेरे?"

"पाई-पाई चुका दी जायगी आपकी। इससे आप बेफिक्र रहिये।"

रामी के इस स्पष्ट जवाब के सामने पारसनाथ का कुछ भी बोलने का साहस नहीं हुआ। वे चुपचाप उठकर चले गये।

रात को जब रंजन घर लौटा, तो रामी ने आते ही उससे कहा—"कल सवेरे ही हमें यह मकान छोड़ देना है।"

"क्यों?" रंजन आश्चर्य से चौंककर उसकी ओर देखने लगा।

"अभी दो घन्टे पहले पारसनाथ आये थे। कह गये हैं कि

सवेरे वे मकान खाली करवाने आयेंगे। इससे बेहतर तो यही है कि जलील होने के पहले ही हम उस रास्ते को छोड़ दें।" रामी के स्वर में अब भी स्वाभिमान और क्रोध का पुट था।

"लेकिन यह तो बेईमानी है रामी। हमें चोरों की तरह मकान से न जाकर खुल्लमखुल्ला जाना चाहिये। अपने पास रक्खा ही क्या है जो कुर्की में चला जायेगा।" रंजन ने यह कहकर प्रश्न-सूचक दृष्टि से पत्नी की ओर देखा।

रामी ने पति से तर्क करना उचित नहीं समझा; क्योंकि इस समय उसका चित्त स्थिर न था। वह कुछ देर के लिये मौन रहना चाहती थी, अतः दुनिया;भर का विवाद छोड़कर गृह-कार्यों में संलग्न हो गई।

× × ×

गजरदम होते ही दम्पति में तर्क चलने लगा। रामी अपनी जिद पर अड़ी थी कि मकान अभी खाली करना है और रंजन चोरी-चोरी मकान से चले जाने के पक्ष में न था। इसके अतिरिक्त उसके सम्मुख एक समस्या यह भी थी कि छोटे-छोटे बच्चों का साथ है, आखिर वह खानाबदोशों की तरह अपना डेरा-डम्बर लिये कहाँ-कहाँ घूमता फिरेगा।

धूप निकल आई, लेकिन कोई भी पक्ष निर्बल नहीं पड़ा। अभी दोनों में तर्क चल ही रहा था कि पारसनाथ आ पहुँचे। पारसनाथ को अकेले आया देखकर रंजन विस्मय में पड़ गया। वह सोचने लगा कि रामी तो इतना उपद्रव मचाये हुए थी कि

पारसनाथ आज मकान खाली करवा ही लेंगे। लेकिन यह बात कुछ समझ में नहीं आ रही है कि ये फिर अकेले क्यों आये हैं? इसके अतिरिक्त और किसी किरायेदार के घर पारसनाथ नहीं जाते हैं। आखिर मेरे घर ये रोज-रोज क्यों आते हैं? इसका क्या कारण है?

पारसनाथ आँगन में खड़े थे और रामी जमीन पर बैठी थी। रंजन उनके आते ही मौन हो गया था। एक क्षण तक नीरवता रही। फिर उसको भंग करते हुए पारसनाथ रंजन की ओर उन्मुख होकर बोले—"क्या बात है रंजन? चुपचाप क्यों खड़े हो?"

रंजन ने—"कुछ भी नहीं।" कहकर टाल दिया और फिर अन्दर से उनके बैठने के लिये मोढ़ा उठा लाया।

रामी गुमसुम बैठी थी। उस की ओर देखकर पारसनाथ कहने लगे—"क्या आज चाय न पिलाओगी रामी?"

रामी ने धीमे स्वर में जवाब दिया—"अभी बनाती हूँ।"

रामी जो चाहती थी, वही उसे मिल गया। वह एकान्त में अँगीठी रखकर चाय बनाने लगी और रंजन यह सोचता हुआ चाय के लिये दूध लेने चला गया कि कितने स्वत्व के साथ पारसनाथ कहता है—क्या आज चाय न पिलाओगी रामी? इसमें अवश्य कोई रहस्य है और उस भेद को केवल दो ही व्यक्ति जानते हैं रामी और पारसनाथ। शायद जब भी पारसनाथ आता है रामी उस को चाय बनाकर पिलाती है। तभी तो आज उसने ऐसा

कहा।

और रामी चाय बनाते-बनाते सहम रही थी कि कहीं रंजन पारसनाथ से बातों-ही-बातों में झगड़ न पड़े। कहीं वह मकान खाली करवाने वाला प्रसंग स्वयं अपने-आप ही न छेड़ दे। क्यों कि पारसनाथ तो एकदम चुप है। रंगा सियार बनकर मुझे रिझाने आया है। भला कहीं पत्थर भी पिघला करते हैं। आश्चर्य है कि पैसे वाले कितनी तरकीबें जानते हैं। वे.........।

"रामी क्या भीतर ही बैठी रहोगी? अरे बाहर आओ।" पारसनाथ ने नम्र स्वर में बुलाया।

लेकिन रामी बाहर नहीं आई। उसने यह कहकर टाल दिया —"अभी कोयलों में आग नहीं लगी है। अँगीठी में ताव आ जाय, फिर आती हूँ।"

पारसनाथ ने बहुत बुलाया, लेकिन रामी बाहर नहीं आई। रंजन दूध लेकर लौट आया। चाय बनी। सबने एक-एक कप होठों से लगा लिया।

रंजन को पारसनाथ का एकदम नया रूप देखकर महान आश्चर्य हो रहा था। पारसनाथ बड़ी देर तक दम्पति से बातें करते रहे और फिर चलते-चलते बोले—"भाई मैं बड़ा क्रोधी आदमी हूँ। गुस्से में आकर कह तो बहुत कुछ जाता हूँ, लेकिन फिर बाद में पछताना पड़ता है। इधर मंडी जा रहा था सोचा तुम्हारे हाल-चाल भी लेता चलूँ। किराये की कोई जल्दी नहीं है। पहले अपने घर की हालत सुधारो।"

और यह कहने के साथ वे उठकर चले गए। रंजन उनके साथ-साथ बाहर तक गया।

रामी सोचने लगी कि कितना चालाक है यह पारसनाथ। कहीं पर भी यह व्यक्त नहीं होने दिया कि कल मैं आकर वादा ले गया था कि सवेरे बाकी वाले किराये का पूरा-पूरा भुगतान हो जायेगा।

रंजन को अब रामी पर पूरा-पूरा सन्देह हो गया था। उसे ऐसा लगने लगा कि अवश्य रामी ने पारसनाथ को किसी प्रलोभन में डाल रखा है। नहीं तो भला पारसनाथ इतना मुलायम कैसे बन जाता। अन्त में यह सोचकर उसने सन्तोष कर लिया कि जो आग खायेगा उसे अंगारे उगलते कितनी देर लगती है। अपने किये का फल मनुष्य इसी जन्म में पा लेता है।

: ५ :

ठंडी-ठंडी पछुआ हवा बह रही थी। आसमान पर छाये दही-जैसे फटे बादल अपना कलेवर बदल असित होते जा रहे थे। ऐसा लगता था कि पानी अवश्य बरसेगा। आज रात की अपेक्षा रंजन तीसरे पहर ही स्टेशन से लौट पड़ा। न जाने आज उसका मन काम में क्यों नहीं लग रहा था। सवेरे से लेकर अब तक केवल चौदह आने पैसे मिले थे उसे। वह भारी मन घर की ओर न जाकर पुस्तकालय जा रहा था। सोचा था कि कुछ देर पत्र-पत्रिकाओं में ही भटकेगा।

संयोग की बात कालेज से आती हुई उसे कस्तूरी मिल गई। रंजन उसका तथ्य समझना चाहता था। इसलिये वह स्वयं उससे मिला और नमस्ते की। कस्तूरी ने भी उसको पहचान कर नमस्ते किया। जब रंजन कस्तूरी के घर गया था, तो उसने उसकी विवशता का अनुमान किया था। कस्तूरी ने भी रंजन को पह

लिया था।

संक्षिप्त बातों होने के बाद कस्तूरी आग्रहपूर्वक रंजन को अपने घर लिवा लाई। उस समय उसके चाचा कहीं गये हुए थे। उसने जल्दी से रंजन को चाय बनाकर पिलाई।

रंजन कस्तूरी के विषय में पूरी जानकारी करने के लिये उतावला हो रहा था। उसने धीरे से कहा—"एक बात पूछूँ ? बताओगी कस्तूरी ?"

"क्यों नहीं। इसमें पूछने की क्या बात थी ?" तनिक मुस्करा कर कस्तूरी ने जवाब दिया।

"तुम राठी और श्रीलाल से क्यों मिलती हो ? क्या तुम्हारे घर वाले तुम्हें मना नहीं करते ?" रंजन की दृष्टि कस्तूरी के मुख पर टिकी थी।

"घर में और है ही कौन। केवल चाचा हैं। वे ही यह सो वृत्ति करवाते हैं मुझसे। आप जानते होंगे कि मैं इस हालत में सुखी हूँ। कैसे बताऊँ रंजन बाबू कि मुझ पर क्या बीत रही है।" कहते-कहते कस्तूरी की आँखों में आँसू छलछला आये और हिल्की भर आई।

रंजन को कस्तूरी के प्रति अगाध सहानुभूति उमड़ आई थी। चाहते आत्मीयता-भरी वाणी में बोला—"तुम्हारे चाचा क्या काम करते हैं ?"

"दिन-भर घूमना। शराब और जुए में मस्त रहना। मुझको धमकाकर इस अमानुषिक कार्य के लिये विवश कर दिया है।

राठी और श्रीलाल उनका पूरा खर्चा उठाते हैं। इसके अलावा घर और मेरी पढ़ाई का भी सारा खर्च उन्हीं लोगों के जिम्मे है। मेरा जीवन तो नरक से भी गया-बीता हो गया है रंजन बाबू। माँगने से तो मौत भी नहीं मिलती है। आप ही बताइये मैं क्या करूँ। कहकर कस्तूरी रोने लगी।

"इसका केवल एक ही इलाज है खुली बगावत।"

रंजन के मुँह से इतना सुनते ही कस्तूरी बोल उठी—"क्या आप जानते हैं कि मैंने इस ओर कदम नहीं उठाया। तनिक ज़बान खोलते ही नृशंस चाचा कसाई की तरह काट देता है। दो-दो दिन हो जाते हैं न अन्न देता है और न पानी। कई बार तो उसने मेरी खोपड़ी ही फोड़ दी। बड़ा उपकार मानूँगी मैं आपका। यदि कहीं से एक विष की पुड़िया लाकर मुझे दे दें।"

"कुछ दिन समाई करो कस्तूरी। मैं तुम्हारा उद्धार अवश्य करूँगा। मैं वचन देता हूँ।" रंजन ने गर्व के साथ कहा।

"लेकिन आपने तो राठी और श्रीलाल का साथ ही छोड़ दिया है, फिर.........?"

"इससे क्या मतलब है तुम्हारा ?" रंजन ने उसे टोक दिया और वह कुछ जवाब दे इसके पूर्व ही कहने लगा—"साथ छोड़ न देता तो क्या रोज उनके साथ बैठकर शराब पीता। वे लोग अच्छे आदमी नहीं हैं।"

"यह आप मुझसे क्या कहते हैं। मैं उन दोनों की नस-नस से परिचित हूँ। वे मनुष्य के रूप में शैतान हैं। कई बार

मेरा गर्भ गिरा कर भ्रूण हत्यायें कर चुके हैं। न माता-पिता का साया सिर से उठता और न यह जघन्य कार्य करना पड़ता मुझको।" यह कहकर कस्तूरी ने एक निःश्वास भरी।

फिर कभी आने का वचन देकर रंजन भी चल दिया। अभी वह चौखट से दो ही कदम आगे बढ़ा था कि श्रीलाल से भेंट हो गई। श्रीलाल को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि रंजन कस्तूरी के घर से आ रहा है। वे फिर उस ओर न जाकर उसके साथ हो लिये। मार्ग में चलते-चलते दोनों मित्रों में बातें होने लगीं। श्रीलाल ने कहा—"क्या बात है रंजन तुमने तो मिलना-जुलना ही छोड़ दिया। ? ऐसी क्या बात हो गई भाई ?"

रंजन कहना तो बहुत कुछ चाहता था; लेकिन दुनियादारी का लिहाज कर सब पी गया और सरल स्वर में उत्तर दिया—"गृहस्थी में बीस झंझट हैं। क्या करूँ ? फुरसत ही नहीं मिलती।"

श्रीलाल ने जब देखा कि रंजन का जवाब एकदम शुष्क है तो वे प्रसंग बदलकर बोले—"जुबली गर्ल्स कालेज की प्रिंसिपल सीतादेवी गोयनका मेरी मरीज हैं। मैं उनका फेमिली डाक्टर हूँ। कल उनसे बात हुई थी। कुछ सोसलाजी की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करना है। ऐसे अनुवादों की कमी है। तुम इस काम को अपना लो तो दो-ढाई सौ रुपये से कम की आमदनी नहीं होगी महीने में। प्रकाशक मुँह मांगा रुपया देंगे। तुम अनुवाद

आरम्भ कर दो। बोलो क्या राय है ?"

रंजन को यह काम सबसे अच्छा लगा। इसमें न तो किसी की नौकरी करनी थी और न किसी की खुशामद। उसने हाँ कह दिया।

इसके बाद दोनों मित्रों में बड़ी देर तक उसी सम्बन्ध में बातें होती रहीं।

× × ×

आपत्ति मनुष्य पर आती अवश्य है; लेकिन फिर उसके बाद सुख का भी अनुभव होता है। काँटों पर सोने वाले को यदि फूलों की सेज दे दी जाय, तो वह उस समय कितना प्रसन्न हो जायेगा। ऐसी ही स्थिति थी रंजन की। वह अंग्रेजी की सोसलाजी वाली पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करता था। उसके अनुवादों की भाषा सरल और मुहाविरेदार होती थी। इसीसे उसके अनुवाद खूब बिकते और प्रकाशक लोग उसको मुँह मांगा पैसा देते थे।

दो-तीन महीने में ही रंजन के घर का सब फेर बँध गया। अब वह इकट्ठा ही पूरा किराया पारसनाथ को देने के प्रबन्ध में व्यस्त था कि किसी प्रकार डेढ़-दो महीने में उनका भी रुपया निकल जाय।

श्रीलाल अब नित्य ही रंजन के घर के चक्कर काटा करते। रामी और रंजन उनकी सहृदयता के भार से दबे थे। इसलिये वे लोग बेरुखाई नहीं करते। लेकिन श्रीलाल धीरे-धीरे फिर रामी की ओर आकृष्ट होने लगे। रामी कोई दूध-पीती बच्ची न

थी। वह सब ताड़ गई। श्रीलाल के मनोभावों को पढ़ते उसे देर न लगी।

श्रीलाल का यकायक साहस नहीं होता था कि वे रामी से कुछ कहें। और रामी ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिये प्रस्तुत बैठी थी। वह अवसर की प्रतीक्षा में थी और श्रीलाल के डग उसकी ओर बढ़-बढ़कर पीछे लौट आते थे।

: ६ :

अब रंजन के पास अवकाश था। वह चौथे-पाँचवें दिन कस्तूरी के यहाँ अवश्य जाता और उसको सुधारवादी विचारों से प्रभावित किया करता।

एक दिन वह जाकर बैठा ही था कि कस्तूरी कहने लगी:—"रंजन बाबू दिन पर-दिन बीतते जा रहे हैं और आपने अब तक मेरे लिये कोई निश्चित कदम नहीं उठाया।"

इस पर रंजन बोला—"अभी तक गृहस्थी के झंझटों में फँसा रहा। इसलिये समय नहीं मिला। अब मैं शीघ्र ही तुम्हारा कोई-न कोई प्रबन्ध करता हूँ।"

इन दोनों में वार्तालाप चल ही रहा था कि राठी साहब आ पहुँचे। लेकिन वे अन्दर नहीं आये। कस्तूरी के चाचा को नमस्ते करके अन्दर आ ही रहे थे कि उनके कानों में रंजन का स्वर पड़ा। वे दीवार के सहारे खड़े होकर दोनों की बातें सुनने लगे।

कस्तूरी कह रही थी—"मुझसे तो अब इस नर्क में नहीं रहा जाता।"

"एक युक्ति है।" तभी रंजन कुछ सोचते-सोचते यकायक बोल उठा।

"क्या ?"कस्तूरी को जैसे जान मिल गई हो।

"कल तुम एक प्रार्थना-पत्र कलक्टर साहब के नाम लिखो। उसको वहाँ तक पहुँचाना मेरा काम है।"

रंजन की इस बात से कस्तूरी खिल उठी। बस उत्सुक होकर बोली—"क्या लिखना होगा उसमें ?"

"यही कि मुझे फ़ाहिशा बनाने के लिये मेरे चाचा पीछे पड़े हैं। वे मुझसे वेश्यावृत्ति करवाकर रुपया पैदा करना चाहते हैं। बस यही सब और विस्तार में लिख देना। समझ गई न ?" रंजन ने यह कहा और फिर जाते-जाते बोला—"देखो किसी पर यह भेद खुलने न पाये।"

"कैसी बातें करते हैं आप।" कहकर कस्तूरी मुस्करा दी और रंजन बाहर निकल गया।

राठी साहब उसको बाहर आता हुआ देखकर आड़ में हो गये और फिर कस्तूरी के चाचा के पास जा जो कुछ उन्होंने अभी सुना था, सब बता दिया। इससे कस्तूरी के चाचा आग-बबूला हो गये। उन्होंने राठी साहब से कहा—"कल से रंजन इस घर में नहीं आयेगा। अगर आ गया तो मैं उसे बलात्कार वाले मामले में फँसवा दूँगा। आप निश्चिन्त रहिये और रह गई कस्तूरी, मैं

उसकी जाकर अभी खबर लेता हूँ।" कहकर वे अन्दर की ओर ताव में भरे चले गये और राठी साहब बाहर निकल आये।

कस्तूरी ने अपने चाचा को जोर-जोर से बोलते देखा तो वह थर-थर काँपने लगी। इतने में वे अन्दर आ गये और उसको घसीट-घसीटकर मारने लगे। बेचारी कस्तूरी रोने के सिवा और क्या कर सकती थी। चाचा साहब जब उसको पीटते-पीटते थक गये तो कुर्सी पर बैठ गये और क्रोध से हाँफते स्वर में बोले— "लिख कलक्टर को दरख्वास्त। मैं तेरी जान ले लूँगा। और रंजन! आने दो बच्चू को न पाँच साल के लिये जेल भेजवाया तो मेरा नाम कृष्णनारायण नहीं है।"

इतना कहकर वे चले गये। अब कस्तूरी की समझ में आया कि उन्होंने रंजन की और उसकी बातें सुन ली हैं। वह अपने लिये तो कड़ी-से-कड़ी यातना भोगने को तैयार थी; लेकिन रंजन को साफ बचा देना चाहती थी।

पूरे दिन पड़ी-पड़ी वह सोचती रही कि क्या करना चाहिये? कल यहाँ रंजन अवश्य आयेगा। उसको किस प्रकार रोकना चाहिये। उस दिन वह कहीं घर के बाहर निकल भी न सकती थी; क्योंकि कृष्णनारायण पहरा दिये बैठे थे।

अन्त में विवश होकर वह भगवान् से विनय करने लगी कि कल रंजन आये ही न तो अच्छा है। दुखी आत्मा की आवाज भगवान् तक जरूर पहुँचती है। कस्तूरी उस दिन कालेज न गई थी। रात को वहाँ चैरिटी शो था। इसलिये पारो और माला उसे

लेने आ पहुँचीं। ये दोनों कस्तूरी की सहपाठिन और अभिन्न सहेलियों में से थीं। वे जबरदस्ती कृष्णनारायण के मना करने पर भी कस्तूरी को अपने साथ लिवा ले गईं।

कस्तूरी को मानो प्राण मिल गये हों। वह सोचने लगी कि यह अवसर अच्छा है। मैं बड़े आराम से रंजन के घर जा सकती हूँ। शो शुरू होने तक कालेज में रुकूँगी। उसके बाद कोई बहाना करके उठ जाऊँगी। रंजन को मना कर देना बहुत आवश्यक है नहीं तो अनर्थ हो जायेगा। बेचारे की कच्ची गृहस्थी है। सब छीछालेदर हो जायेगी। सिद्धान्त तो यह कहता है कि जो अपना साथ दे, उसके साथ भी पूरा-पूरा निर्वाह करना चाहिये। दुनिया के काम सब एक-दूसरे के माध्यम ही से चलते रहते हैं। ताली कभी एक हाथ से नहीं बजती। यदि रंजन मेरे लिये मैदान में उतर सकता है। तो मैं भी उसकी ढाल बनने को सहर्ष तैयार हूँ। मैं उसे मनाकर आऊँगी कि अभी वह इस समय जलती हुई आग में न कूदे। कुछ दिन बाद देखा जायेगा।

इसी प्रकार अपने विचारों में व्यस्त कस्तूरी शो शुरू होने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे रंजन के घर पहुँचने की इतनी जल्दी थी कि चाहती थी पर लगाकर उड़ जाय। लेकिन शो आरम्भ होने में अभी आधे घन्टे की देर थी और कस्तूरी को एक-एक मिनट पहाड़-जैसा लग रहा था।

: ७ :

उस दिन रात को कस्तूरी रंजन के घर आई और बाहर बुलाकर उसको सब हाल बता गई। रामी को आश्चर्य हुआ कि इतनी रात गये आखिर यह लड़की इनसे (रंजन) मिलने क्यों आई? वह मन-ही-मन सोचती रही, लेकिन रंजन से कुछ नहीं पूछा। पूछती भी तो कैसे। यह वही तो रंजन था जो दिन-भर का कच्चा चिट्ठा घर आते ही रामी को बताया करता था और तब रामी भी कोई बात अपने मन में नहीं रख पाती। अब पता नहीं क्या हो गया था जो दम्पति के बीच व्यवधान आगया था।

एक दिन अवसर पाकर कस्तूरी फिर रंजन के घर आई और उसको अपने साथ लिवा ले गई। अब तो रामी के सन्देह के लिये तनिक भी सन्धि शेष न रह गई। वह सोचने लगी कि अवश्य कुछ दाल में काला है, तभी तो यह लड़की बार-बार दौड़-

कर आती है।

कस्तूरी अपने साथ रंजन को एक रेस्त्रां में लिवा ले गई। वहाँ उसकी और रंजन की इस प्रकार बातें होने लगीं।

रंजन ने पूछा—"राठी और श्रीलाल अब तुम्हारे घर आते हैं कि नहीं ?"

"वे भला क्यों न आयेंगे।" इतना कहकर उसने ब्वाय को दो गिलास लस्सी और नमकपारा लाने को कहा।

रंजन ने कोई एतराज नहीं किया। वह बातचीत का सिलसिला आरम्भ करने के पहले ब्वाय के आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

रेस्त्रां में उस समय बड़ी चहल-पहल थी। शाम का समय था और शिद्दत की गर्मी पड़ रही थी। गर्मी से परेशान लोग रेस्त्रां की ओर भागे आ रहे थे। कोई लस्सी, कोई लैमन और कोई कुलफी खाने में व्यस्त था। ग्रामोफोन पर नया रेकार्ड बज रहा था—"इन्सान और ईमान बिके इस दुनिया के बाजार में।"

रंजन ने कस्तूरी की ओर दयनीय आँखों से देखा और फिर बोला—" वास्तव में यह सही है कस्तूरी कि आज कि दुनिया में इन्सान और उसके ईमान का कोई मूल्य नहीं रह गया है। हर बड़ा छोटे को खाये जाता है।"

ब्वाय लस्सी और नमकीन ले आया था। दोनों ने गिलास अपने-अपने हाथों में ले लिया।

"मैं एक आवश्यक काम से आई हूँ आपके पास।" लस्सी का एक घूँट गले के नीचे उतार कर कस्तूरी बोली।

"क्या ?" रंजन उसकी ओर ध्यान से देखने लगा।

"मुझे तीन महीने का गर्भ है और अब तक राठी और श्रीलाल मिलकर कई भ्रूण हत्यायें कर चुके हैं। मैं इसी डर से उन लोगों से छिपाती रही। कल किसी प्रकार राठी को पता चल गया है उन्होंने चाचा और श्रीलाल को भी बता दिया है। शायद रात को राठी उसको नष्ट करने के लिये कोई दवा लायेंगे। मैं सच कहती हूँ रंजन बाबू की कि मैं तंग आ गई हूँ ऐसी जिन्दगी से। इसीलिये मेरा स्वास्थ्य दिनों-दिन खराब होता जा रहा है। बोलो क्या उपाय है अब इसका ?" कहकर वह दुखिया नेत्रों से रंजन की ओर देखने लगी।

रंजन किसी गहरे विचार में डूब गया। वह चौंककर बोला—"उपाय अब इतनी जल्दी तो नहीं सोचा जा सकता।"

"फिर क्या करना चाहिये मुझे ?" कस्तूरी अधीर हो उठी।

"यदि आज राठी साहब दवा लायें तो उनके सामने न खाना। बाद में फेंक देना और कल मुझको यहीं इसी समय रेस्त्रां में मिलना, तब बातें होंगी।" इतना कहकर रंजन उठ खड़ा हुआ; क्योंकि लस्सी का गिलास खाली हो चुका था।

कस्तूरी ने भी बिल चुकाया और अपने घर की ओर चल दी।

रास्ते में रंजन सोचता जा रहा था कि कस्तूरी का जीवन कितना संकटमय है। काश ! मैं उसका उद्धार कर पाता। समझ में नहीं आता कि कस्तूरी भ्रूण-हत्या चाहती नहीं है, फिर भला समाज

उसे स्थान कैसे देगा। वर्णसंकर सन्तान से भला कौन नहीं चौंकेगा। मेरी समझ से तो गर्भपात हो जाना ही अच्छा है। तभी अगला कदम साहसपूर्वक उठाया जा सकता है।

लेकिन दूसरे ही क्षण रंजन की विचारधारा घूम गई। वह सोचने लगा कि भ्रूण-हत्या से बढ़कर कोई दूसरा पाप दुनिया में नहीं है। कस्तूरी को इससे बचाना होगा। नाजायज सन्तान के लिये अनाथालय उपयुक्त स्थान है। कल मैं कस्तूरी से कह दूँगा कि अभी वह यही बहाना किये रहे कि मैंने दवा खा ली है। तब तक मैं कोई-न-कोई युक्ति निकाल ही लूँगा।

: ८ :

दिन के ग्यारह बजे थे। रंजन बाहर वाले कमरे में बैठा लिख रहा था। जगत और मीना चबूतरे पर खेल रहे थे। हवा दस बजे से ही गरम हो चली थी और इस समय तो ऐसा लग रहा था कि ठीक दोपहर हो गई है। रंजन दरी बिछाये बैठा था। पास ही एक खजूर का पंखा रखा था, जिसे वह कभी-कभी उठा-कर डुला लेता। कमरे में उमस लग रही थी। बैठने को जी नहीं चाहता था। लेकिन काम करना आवश्यक था। इसके बिना गति नहीं। इसीलिये रंजन उसमें जुटा था।

सहसा बाहर जगत और मीना चिल्ला उठे—"मौसी आ गई।"

रंजन चौंक उठा। वह सामने दरवाजे की ओर देखने लगा। तबतक मीरा ने कमरे में प्रवेश किया और दोनों हाथ बांधकर मुस्कराती हुई बोली—"नमस्ते।"

"नमस्ते।" रंजन ने भी कहा और दुनियादारी के नाते फिर पूछ लिया—"कहो अच्छी तरह तो रही मीरा।"

"सब तुम्हारी कृपा है जीजा।" कहकर उसने पास खड़े दोनों बच्चों को गोद में उठा लिया और अन्दर रामी के पास चली गई।

मीरा के चले जाने के बाद रंजन की कलम जहाँ-की-तहाँ ही रुक गई। वह हैरान हो उठा कि मीरा यहाँ क्या करने आई है? क्या फिर महीनों पड़ाव करेगी यहाँ? अच्छी व्याधि यह पीछे पड़ गई है। इससे किस तरह छुटकारा पाया, जाय यह समझ में नहीं आता है। रामी भी इससे चौंकती है। उसे मीरा का यहाँ रहना बिल्कुल पसन्द नहीं है। क्योंकि पिछली बार मैं कुछ-कुछ उसके मीरा के साथ होने वाले व्यवहार को समझ गया था।

जब रंजन का मन न लगा तो वह उठकर अन्दर आया। वहाँ रामी मीरा से पूछ रही थी—"न कोई चिट्ठी और न कोई पत्री। अचानक आना कैसे हो गया तुम्हारा?"

मीरा ने सहज स्वर में जवाब दिया—"तबियत ऊबी चली आई।"

"चलो अच्छा किया।" रामी ने शिष्टाचार का तो पूरा-पूरा पालन कर दिया। लेकिन मन-ही-मन वह कुढ़कर रह गई।

रंजन आँगन में आये बिना ही वापिस चला गया और फिर उसके कदम पार्क की एक छाया में पड़ी हुई बेंच के ही सामने जाकर रुके।

× × ×

रंजन को जिस बात का डर था वही हुआ। मीरा दूसरे दिन एकान्त पाकर उसके पास गई। रामी इस समय रसोई में थी। रंजन ने कलम रख दी और उठकर कमरे में टहलने लगा। मीरा दरी पर बैठ गई और उसकी ओर देखकर बोली—"अब क्या होगा ?"

रंजन एकदम चौंक उठा। उसने कुछ पूछा नहीं, केवल मीरा की ओर देख-भर दिया।

मीरा फिर कहने लगी—"मैं माँ बनने जा रही हूँ।"

रंजन को उसकी इस बात से अत्यधिक घृणा हो आई। वह उपेक्षापूर्वक बोला—"तो मैं क्या करूँ ?"

"तो क्या राहगीर करेंगे ?" मीरा ने साहसपूर्वक कहा।

"क्यों मुझसे क्या मतलब है ?" रंजन को रोप आ रहा था।

"सारा मतलब तो तुम्हीं से है ?" कहकर मीरा कुछ मुस्कराई।

"देखो पहेली न बुझाओ मीरा। जो कुछ कहना है साफ-साफ कहो।" रंजन के स्वर में खिसियाहट थी।

"उस दिन की बात याद करो जब शराब पीकर आये थे। तो.........।"

अभी मीरा की बात पूरी भी न हो पाई थी कि रंजन ताव में आकर बोल उठा—"तो उससे तुम्हारा क्या मतलब है ?"

"क्या इतनी जल्दी भूल जाओगे ? फिर तो मैं कहीं की भी

न रहूँगी। सारा गाँव चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि मीरा कानपुर से रंजन का पेट लेकर आई है और तुम मुकर रहे हो।" कहकर मीरा रोने लगी।

"देखो बेवकूफ बनाने की कोशिश न करो मीरा। मुझसे तुम्हारा कभी अनुचित सम्बन्ध नहीं रहा।" आक्रोश-भरी वाणी में रंजन ने कहा।

"हाँ, अब तो यह कहोगे ही। मुझे नहीं पता था कि अन्य पुरुषों की भाँति तुम भी कठोर होगे। मैं तो तुम्हें देवता समझती थी। मैं.........।"

"देवता नहीं मैं शैतान हूँ। अब पीछा भी छोड़ोगी मेरा या नहीं?" रंजन क्रोध से दाँत पीसने लगा। ताव में आकर वह कमरे से बाहर जाने लगा कि मीरा उसके पैरों में लिपट गई और रोते-रोते बोली—"समझ में नहीं आता कि तुम उस रात की याद कैसे भूल गये। तुमने तो उस दिन मुझे वचन दिया था कि मैं तुमको पत्नीस्वरूप स्वीकार कर लूँगा। फिर आज क्या हो गया है तुम्हें?"

"अधिक भूमिका मत बाँधो। मैं सब समझता हूँ कि तुम कितने गहरे पानी में हो। यह लटका किसी और को दिखाना। जब पाप छिपाये नहीं छिपा तो मेरे सिर मढ़ने चली आई।" कहकर रंजन अपने पैर छुड़ाने लगा। किन्तु मीरा उन्हें खूब कस कर पकड़े हुए थी।

वह रो-रोकर कह रही थी—"मेरे अंग-अंग में कोढ़ फूटे,

अगर यह गर्भ तुम्हारा न होकर किसी और का हो। शायद तुम को याद नहीं है; क्योंकि तुम नशे में थे।"

"मैं अब एक भी बात सुनना नहीं चाहता हूँ।" कहकर रंजन ने अपने पैर छुड़ा लिये और द्रुतगति से बाहर निकल गया।
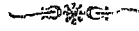
तृतीय खण्ड
'किनारा'

: १ :

अच्छी बात को कोई किसी से कहने नहीं बैठता; लेकिन बुरी बात का प्रचार हवा की तरह हो जाता है। रामी के कानों में भी गाँव की चख-चख आकर भरने लगी कि कानपुर से मीरा रंजन का पेट लेकर आई है। वह हैरान हो उठी। शर्म से उसकी गर्दन झुकी जा रही थी।

मीरा ने तो अपनी लाज-शर्म सब धोकर पी ली थी; किन्तु रामी को अत्यधिक ग्लानि थी। यद्यपि दोष उसके पति का था; मगर वह पानी-पानी हुई जा रही थी। ऐसा लगता था कि किसी ने उसके ऊपर घड़ों पानी डाल दिया है।

रामी ने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह घर छोड़ देगी। बदनाम होकर जीने से तो मरना कहीं अच्छा है। वह अब उस घर में न रहेगी, जहाँ भ्रष्टाचार का पदार्पण हो चुका है। वह प्रातः जाने की सोच सो गई। लेकिन रात-भर उसे नींद नहीं आई। जब

रंजन की ओर से आँखें फेर लेने का प्रयत्न करती, तो गृहस्थी का माया-मोह सताने लगता और जब इस ओर से भी वह उपेक्षा-पूर्वक मुँह घुमा लेती, तो बच्चे सामने आकर खड़े हो जाते। रामी बच्चों के मोह के आगे विवश हो गई। उसके पैरों में ममता की बेड़ियाँ पड़ गईं। वह कहीं न जा सकी।

× × ×

प्रत्येक भला व्यक्ति बदनामी से डरता है। रंजन की भी यही स्थिति थी। वह रामी के सामने चेहरा नहीं करता था। यद्यपि अपनी ओर से वह बिल्कुल निर्दोष था; मगर वास्तव में दोषी तो वह था ही। इस बात को रामी भी जानती थी। ज्ञानावस्था हो चाहे अज्ञानावस्था, पाप के लिये मनुष्य को अपराधी बनना ही पड़ता है।

रंजन का जी चाहता था कि घर से वह कहीं भाग जाय और जब यह मीरा चली जाय, तब आये। लेकिन साथ ही वह गृहस्थी के कर्तव्य से च्युत नहीं होना चाहता था। उसे अपनी कच्ची गृहस्थी का बड़ा मोह था।

और मीरा, वह जबरदस्ती रंजन के गले में आकर बँध गई थी। वसंत की फूल रही फुलवारी में वह पतझर की सृष्टि करने आई थी। वह रंजन से बात करना चाहती; लेकिन वह उसको इतना अवसर ही नहीं देता था। मीरा खिसियाकर रह जाती।

नशे की हालत में मीरा जो-जो बातें रंजन से कहती गई, रंजन सब में हाँ-हाँ करता रहा था। यही एकमात्र मीरा का अव-

लम्ब बन गया था। किन्तु आज उसके आत्मविश्वास को ठेस लग रही थी। रंजन उस दिन की बात एकदम भूल ही गया था। वह उसे झुठला रहा था।

किन्तु मीरा अब भी अपनी टेक पकड़े हुए थी कि रंजन को उसे हर हालत में स्वीकार करना ही पड़ेगा। यदि ऐसा न हुआ तो वह अपनी जान दे देगी। उसका कहना था कि जब बदनामी हो ही चुकी है, तो गर्भ गिरवाने से क्या लाभ? वह आजीवन रंजन की होकर रहना चाहती थी।

मीरा ने तय कर रक्खा था कि वह अपना काला मुँह लेकर गाँव नहीं जायेगी। यदि रंजन ने उसको अंगीकार कर लिया, तो वह गर्व के साथ गाँव जा सकती है, अन्यथा नहीं। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि रंजन के घर पर ही वह धरना दिये बैठी रहेगी। कभी-न-कभी तो वह पसीजेगा ही।

: २ :

रामी हैरान थी। उसे रोज-रोज कस्तूरी का अपने घर आना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। आज फिर वह आई और रंजन को अपने साथ लिवा ले गई। रामी तिलमिलाकर रह गई। उसका कुछ भी वश नहीं चला।

कस्तूरी और रंजन की बैठक थी उसी रेस्त्रां में, जिसमें ये लोग अक्सर जाया करते थे। ब्वाय को दो लैमन का आर्डर देकर कस्तूरी सम्भल कर कुर्सी पर बैठ गई और रंजन की ओर देखकर कहने लगी—"अब तो गजब हो गया रंजन बाबू।"

"क्या ?" रंजन समझा कि शायद राठी साहब की दवा इसको खानी पड़ गई है।

"मोहल्ले के किसी व्यक्ति ने कोतवाली में रिपोर्ट कर दी है कि कस्तूरी गर्भवती है। उसके चाचा उससे पेशा करवाते हैं। कई गर्भ उसके गिराये भी जा चुके हैं। अब की बार भी उसे

नष्ट करने की तैयारी हो रही है।" इस प्रकार कस्तूरी कहे जा रही थी और रंजन कान खड़े किये सुन रहा था।

ब्वाय लैमन ले आया था। उसकी बोतलें यथास्थान रख रंजन व्यस्त स्वर में पूछने लगा—"फिर क्या हुआ ?"

"पुलिस जांच करने आई थी। साथ में एक लेडी डाक्टर भी थी। चाचा को वे लोग हिदायत कर गये हैं कि गर्भ नष्ट नही किया जायेगा और दस तारीख को सिटी मजिस्ट्रेट के सामने मेरे बयान लिये जायेंगे। राठी और श्रीलाल अब भूलकर भी उस ओर नहीं आते हैं। बताओ अब मैं क्या करूँ। कहते-कहते कस्तूरी रुआसी हो आई।

"इस समय अब तुम जाओ कस्तूरी। मैं पहले राठी फिर श्रीलाल और उसके बाद तुम्हारे चाचा से मिलूँगा। कल तुम रेस्त्रां न आना, मैं स्वयं तुम्हारे घर आऊँगा।"

रंजन के मुँह से इतना सुनते ही कस्तूरी बोल उठी—"और चाचा ?"

"उनसे मैं निपट लूँगा, तुम निश्चिन्त रहो।" कहकर रंजन ताव में भरा हुआ राठी के घर की ओर चल दिया। कस्तूरी खड़ी उसको तब तक देखती रही जब तक वह दृष्टि से ओझल न हो गया।

× × ×

डाक्टर राठी डिस्पेंसरी से आ भोजन कर चारपाई पर लेटे ही थे कि रंजन आ पहुँचा। राठी साहब बाहर आये और बैठक

खोलकर बैठ गये। रंजन भी पास ही एक कोच पर बैठ गया।

राठी साहब ने पंखा खोल दिया और फिर रंजन की ओर देख मुस्कराते हुए बोले—"आज कहाँ भूल पड़े रंजन ? तुम्हारे तो दर्शन ही नहीं होते हैं।"

"दर्शन तो बड़े आदमियों के नहीं होते हैं। मैं तो आपके सामने एक नाचीज हूँ। एक काम से आया था आपके पास।" रंजन ने तत्क्षण ही सजग हो प्रसंग बदल दिया। जिसमें राठी कहीं अपना रामरसरा न छेड़ दे तो घन्टों की फुरसत हो जाय।

"कहो न बैठे क्यों हो ?" राठी ने प्रसन्न होकर कहा।

"अब आप कस्तूरी के यहाँ क्यों नहीं जाते ? सुना है कि उसके गर्भ है। पुलिस जाँच करने आई थी, दस तारीख को सिटी मजिस्ट्रेट की अदालत में उसके बयान होंगे। उसके लिये क्या सोचा है आपने ?" रंजन ने प्रश्न किया।

पहले तो राठी साहब कुछ चौंके कि रंजन को यह सब भेद कैसे मालूम हो गया। फिर यह सोचकर कि कस्तूरी ने इसको बतलाया होगा; क्योंकि यह तो सही है ही कि छिप-छिपकर दोनों मिलते रहते हैं।

राठी साहब ने बात को दूसरे रूप में ले लिया। वे हँसकर बोले "तुम भी यार बच्चों की सी बातें करते हो रंजन। जानते नहीं कि फल दुनिया खाती है, लेकिन पेड़ कोई नहीं गिनता। तमाम कस्तूरी पड़ी हैं इस शहर में। पैसा होना चाहिये।"

"कहते तो आप ठीक ही हैं राठी साहब; लेकिन इन्सान को

पाप उतना ही कमाना चाहिये जितना उसके वश का हो। अधिक बोझ को लेकर तो नाव मंझदार में ही डूब जाती है। आप तो डाक्टर हैं। एकमात्र जनता के सेवक, फिर भी आपके ऐसे गन्दे विचार। मालूम होता है कि समाज का सारा विकार आपके ही मस्तिष्क में आकर केन्द्रित हो गया है। एक नादान लड़की के जजबातों से खेलते हुए आपको शर्म न आई। भ्रूण-हत्या करते-करते निर्दयी हो गये हो। अगर जाकर अभी कोतवाली में खबर कर दूँ तो फौरन ही हथकड़ियां पड़ जायेंगी। रँगे सियार बने घूमते हैं और कहते हैं मैं डाक्टर हूँ।" कहने के साथ ही वह उठकर चल दिया। पीछे घूमकर भी नहीं देखा।

राठी साहब उसकी बातों को सोचते ही रह गये।

× × ×

उसके बाद रंजन श्रीलाल के पास गया। वे भी नींद में खुर्राटे ले रहे थे। रंजन ने उसको जगाया और वैसे ही पूछने लगा—"अब तुम कस्तूरी के यहाँ क्यों नहीं जाते हो?"

"क्यों जाता तो हूँ?" श्रीलाल ने फौरन बात बना दी।

"तुम झूठ बोलते हो। अभी-अभी कस्तूरी मेरे पास आई थी, सब हाल बता गई है। बोलो अब क्या कहते हो उसके लिये।" रंजन की आवाज तेज थी, इससे श्रीलाल पहले तो कुछ सिटपिटाये, फिर सोचकर कि अब छिपाने की तो सन्धि है नहीं। इसलिये सत्य को अपनाना ही पड़ेगा।

वे धीरे से बोले—"मुझ से भूल हो गई है रंजन। अब

तुम्हीं बताओ कि मैं उसके लिये क्या करूँ ?"

"हर काम को करने के पहले उसका अन्जाम सोच लेना चाहिये। अब मैं क्या बताऊँ। तुम स्वयं ही सोच लो।" कहकर रंजन ठुड्डी पर हाथ रखकर कुछ सोचने लगा।

श्रीलाल हैरान हो उठे। उनकी समझ में न आया कि क्या करें। वे फिर रंजन से बोले—"आज कई दिनों से मुझे स्वयं ही ऐसी ग्लानि हो रही है कि मैं हैरान हूँ। अब मुझे भी इस बात का अनुभव हो रहा है कि मनुष्य को जब तक स्वयं किसी चीज से घृणा नहीं होती, तब तक वह उसे अच्छी ही समझता रहता है। अब मैं फैसला तुम पर छोड़ता हूँ। जो कह दोगे वह मुझे मान्य होगा; क्योंकि मैं कस्तूरी को प्यार करता हूँ।"

"तो दस तारीख को अदालत में चलकर इस बात को स्वीकार करोगे कि गर्भ मेरा है। मैं कस्तूरी का मँगेतर हूँ। कस्तूरी मेरी भावी पत्नी है।" रंजन ने अपनी प्रश्नसूचक दृष्टि श्रीलाल के मुख पर गड़ा दी थी।

श्रीलाल यकायक कुछ जवाब नहीं दे सके। वे सोचने लगे कि है तो दुरुस्त ही। एक पंथ दो काज हो जायेंगे। कस्तूरी भी बला से बच जायेगी और मेरा घर बस जायेगा। इसके अलावा रंजन की बात भी रह जायेगी और सहमत न होने पर इसमें एक नहीं अनेकों विघ्न पड़ सकते हैं रंजन और कस्तूरी की ओर से। ऐसा सोचकर वे रंजन से बोले—"तो क्या मतलब है तुम्हारा कि मैं कस्तूरी से ब्याह कर लूँ ?"

"बेशक।" रंजन की मुद्रा अभी वैसी ही थी।

"अच्छा भाई तुम को मैं नाराज नहीं करूँगा रंजन बाबू। मैं सहमत हूँ।"

इतना कहने के बाद तनिक चुप रहकर फिर कहने लगे—"इस तारीख का झंझट रखने की आवश्यकता क्या है। कल ही मैं कस्तूरी से सिविल मैरिज कर लूँगा।"

"तुम डाक्टर क्या बन गये, पूरे अँग्रेज हो गये। सिविल मैरिज करेंगे।" और यह कहकर वह हँस दिया।

श्रीलाल कुछ झेंप गये और रंजन कहने लगा—"आर्य-समाज भवन में कल ही ब्याह-कार्य सम्पन्न हो जायेगा। चलो आओ कस्तूरी के चाचा और कस्तूरी को तो यह शुभ सम्वाद सुना आयें।"

"चलिये साहब। अब तो जो कुछ आप कहेंगे वह करना पड़ेगा।" कहकर मुस्कराते हुए श्रीलाल कपड़े पहनने लगे।

दोनों मित्र आपस में प्रेमालाप करते हुए कस्तूरी के घर की ओर जा रहे थे। बातों-ही-बातों में श्रीलाल ने बताया कि एक दिन उनकी नीयत रामी पर भी डोल गई थी, लेकिन ईश्वर ने लाज रख ली।

रंजन को श्रीलाल की यह बात बुरी नहीं लगी। बल्कि हर्ष हुआ कि श्रीलाल कितना निष्कपट है। अब जब उसे होश हुआ है तो अपनी कमजोरियाँ स्वयं अपने-आप ही बता रहा है। यह सोचकर वह हँस दिया। श्रीलाल को इससे जान-सी मिल गई।

और रंजन मन-ही-मन सोचने लगा कि यह श्रीलाल की हार नहीं, वरन् उसकी सबसे बड़ी जीत है। पतन के गहरे गर्त में खड़ा व्यक्ति अपना सुधार स्वयं ही कर ले, तो वह महान् कहा जाता है। अपनी भूल को स्वयं पकड़ने का ही नाम कौशल है। यही उत्थान का एकमात्र साधन है।

रंजन ऐसे विचारों में खोया था और श्रीलाल अपनी कहे जा रहे थे। वह बीच-बीच में हाँ-हाँ कर देता। रास्ता तय हो रहा था।

: ३ :

कस्तूरी उस समय घर में नहीं मिली। दोनों मित्र लौट आये। श्रीलाल अपने घर की ओर चले गये और रंजन अपने घर की ओर। अभी वह बाहर ही था कि देखता है पारसनाथ आँगन में खड़े हैं और रामी बैठी है। मीरा और बच्चे रसोई में हैं। वह वहीं पर रुक गया और परिस्थिति का अध्ययन करने लगा।

रामी उनसे कह रही थी—"यदि ईश्वर ने चाहा तो अगले सप्ताह ही आपको अब तक का किराया मिल जायेगा; क्योंकि उनको (रंजन) एक किताब के पैसे मिलने वाले हैं।"

इस पर पारसनाथ ने हँसकर कहा—"किराया माँगने कौन आया है, मैं तो दर्शन करने आया हूँ।"

"क्या मतलब ?" रामी कुछ गरमाई।

"यह तो मेरे दिल से पूछो।" कहकर उन्होंने रामी की कलाई पकड़ ली।

रामी भूखी सिंहनी-सी पारसनाथ पर टूट पड़ी और मार थप्पड़ों उनका मुँह सुजा दिया।

मीरा और बच्चे रसोई के बाहर आ गये और रंजन भी सामने आ गया। वह रामी को पीछे हटाता हुआ बोला—"तुम्हारी मार का इस राक्षस पर भला कैसे असर होगा। इसका इलाज मैं करता हूँ।" यह कहकर रंजन उनको गिराकर छाती पर चढ़ बैठा और चार-छः घूँसे कनपटियों में मारकर बोला—"बोल दुष्ट जान ले लूँ तेरी। मैं अब तक रामी को सन्देह की निगाह से देखता चला आया; लेकिन आज असलित का भेद खुला।"

पारसनाथ जैन बड़ा सयाना आदमी था। अवसर देखकर उसने अपना तीर छोड़ दिया। वह बोला—"रामी से पूछो, पहले यही तो मेरी कोठी पर गई थी। मुझको दोषी बाद में ठहराना।"

रंजन ने लाल-लाल आँखों से रामी की ओर देखा। रामी सहम गई और आद्योपान्त सब अतीत की बातें संक्षेप में उसको बता दीं। रंजन को रामी पर विश्वास था कि वह झूठ नहीं बोलती है। लेकिन साथ ही दुःख भी था कि उसने अब तक मुझे कुछ बताया क्यों नहीं। फिर यह सोचकर संतोष कर लिया कि झगड़ा न बढ़े; क्योंकि अपनी चोटी पारसनाथ के नीचे दबी थी, शायद इसलिये रामी ने इसकी कभी चर्चा नहीं की।

रंजन का क्रोध पारसनाथ पर दूने वेग से बरस पड़ा। वह बोला—"धूर्त अब भी झूठ बोलने से बाज नहीं आ रहा है। अरे तनिक तो शरम खा।" और यह कहकर उनको उठा-उठाकर

पटकने लगा।

मार से भूत डरते हैं। पारसनाथ हाथ जोड़कर माफी माँगने लगे। लेकिन रंजन उनको छोड़ नहीं रहा था। रामी और मीरा को तरस आ गया। उन दोनों ने उनको छुड़ा दिया। पारसनाथ अपना बदन झाड़ते हुए शर्म से सिर झुकाये धीरे-धीरे घर के बाहर निकल गये।

× × ×

पारसनाथ के चले जाने के बाद रामी सोचने लगी कि कहीं यह इस्तिगासा न दायर कर दे जाकर जो दफा ३२३ और ३२५ दोनों ही लग जायँ। मार खाकर गया है चुप नहीं बैठेगा। कुछ-न-कुछ अवश्य करेगा। ऐसे नीचों को बाहुबल से पराजित करना सबसे बड़ी भूल है। इनको तो व्यवहार और वाणी से मारना चाहिये। खैर जो होगा, देखा जायगा। अब तो तीर तरकस के बाहर हो चुका है।

और रंजन की धारणा थी कि अब कभी पारसनाथ इधर की ओर मुँह भी नहीं करेगा और न नालिशवाली कार्यवाही ही पूरी करेगा; क्योंकि उसे बदनामी का डर है। हाँ अलबत्ता तकाजा जरूर भेज दिया करेगा कभी-कभी। लेकिन मुझे उसका किराया चढ़ाकर करना ही क्या है। आठ-दस दिन में सब रुपया फेंक दूँगा।

: ४ :

मीरा हाथ धोकर रंजन के पीछे पड़ी थी और रंजन जान बचाता था। एक रात को जब वह छत पर पड़ा सो रहा था, मीरा ने उसको जाकर धीरे से जगाया और बोली—"आज आखिरी फैसला चाहती हूँ मैं। कहो क्या कहते हो?"

रंजन उठकर बैठ गया और आकाश में चमक रहे चाँद की ओर देखने लगा। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया।

मीरा के पीछे ही रामी भी दबे पाँव जीने पर आ गई थी। वह इन दोनों का व्यवहार देखने लगी।

मीरा अकुला कर बोल उठी—"बोलते क्यों नहीं? जवाब दो।"

लेकिन रंजन मौन था।

मीरा कहने लगी—"उस दिन किस मुँह से कहा था कि मीरा अब तुम मेरे पास से कभी न जा पाओगी। फिर आज

क्या हो गया है तुम्हें ?"

"मीरा तुम नीचे चली जाओ। नहीं तो मैं नीचे कूद पड़ूँगा। चली जाओ बस मुझ से बात न करो।" कहकर वह क्रोध से दाँत पीसता हुआ उठा और दोनों हाथ पीछे बाँध छत पर टहलने लगा।

लेकिन मीरा न हटी। वह रो-रोकर कह रही थी—"अब यह पाप की गठरी लिये मैं कहाँ-कहाँ फिरूँ। कौन पनाह देगा मुझको। गाँववाले तो जिन्दा ही मार डालेंगे। इसी डर से मैं यहाँ चली आई। हाथ पकड़ कर साथ न छोड़ो। तुम्हें मेरी कसम है।"

"मीरा तुम जाती हो कि मैं बुलाऊँ रामी को ?" रंजन ने उसे डाँटकर कहा।

"बुलाओ। मुझे किसी का डर नहीं है। मैं अपने अधिकार के लिये सबसे लड़ूँगी।" मीरा कमजोर नहीं पड़ी।

रंजन को ताव तो बहुत आया कि अभी उसको उठाकर नीचे फेंक दे, लेकिन समाई कर गया। वह सोचने लगा कि स्त्री जब अपनी जिद पर आ जाती है तो किसी की भी एक नहीं मानती। चाहे उसके टुकड़े-टुकड़े ही क्यों न कर दिये जाय। वहाँ पर उसका रूप आसुरी हो जाता है। वह घात भी कर सकती है और बलिदान भी दे सकती है। मीरा इस समय प्रचण्ड चण्डी बनी बैठी थी। रंजन को मौन का मार्ग ही पसन्द आया।

लेकिन मीरा को इससे सन्तोष कहाँ। वह फिर उलझ पड़ी उससे। दोनों हाथ नचा-नचाकर कहती थी—"भगवान् की बड़ी-

बड़ी बाहें हैं वे ही इसका इन्साफ करेंगे। मुझे क्या, जो मुझे सतायेगा वह स्वयं ही दुःख का भागीदार होगा। मैंने स्वप्न में न सोचा था कि तुम भी मतलबी निकलोगे। मैं………।"

"चलो हटो।" कहकर वह मीरा की ओर तेजी से झपटा; लेकिन फिर कुछ सोचकर रुक गया और बोला—"अच्छा तुम बैठो। मैं जाता हूँ।" कहकर वह जीने की ओर लपका। मीरा ने उसके पैर पकड़ने चाहे, लेकिन उसने मौका ही न दिया।

रामी जल्दी से नीचे उतर गई। लेकिन वह अपने को छिपा न सकी। रंजन ने उसे जीने से उतरते देख लिया था।

वह रामी के कमरे में न जाकर दूसरे कमरे में चला गया और रामी थोड़ी देर तक तो दरवाजे पर खड़ी मीरा के उतारने की प्रतीक्षा करती रही। फिर जाकर लेट रही। इस समय उसका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था।

: ५ :

पानीवाला आदमी कभी अपना अपमान और बदनामी नहीं सह सकता, उसको निगाहें उठाकर चलना तो दूर रहा घर से निकलने में भी झेंप मालूम होती है। कस्तूरी के भी कान अपनी बदनामी सुनते-सुनते पक गये थे। वह दस तारीख की कल्पना कर मन-ही-मन सूखी जा रही थी। वह सोचने लगी कि कितनी स्वार्थ-परायण है यह दुनिया! कोई भी अब उसके काम नहीं आ रहा है। उस पर जान देने वाले श्रीलाल और राठी अब उसके घर की ओर मुँह भी न करते थे। उसके चाचा जो अपने घर के एकछत्र सम्राट बने हुए थे, वे भी उसकी बदनामी को बँटा न सके।

कस्तूरी को केवल सहारा रंजन का था। लेकिन जब दूसरे दिन शाम तक वह उसकी राह देखती रही और वह न आया, तो अपना ट्रंक खोल उसमें से अफीम निकाली। यह अफीम उसको बड़ी खुशामद करने और दस रुपये देने पर पड़ोस की एक बुढ़िया

ने लाकर दी थी ।

धीरे-धीरे घड़ी ने आठ बजाये। अब कस्तूरी की उलझन बहुत बढ़ गई। दुनिया में कोई ऐसी वस्तु न थी जिससे उसे मोह होता। अपनी जान वह हमेशा से हथेली पर लिये रही। आज वह जीवन से पूर्णतया निराश हो आई थी। वह अब एक क्षण के लिये भी जीना नहीं चाहती थी। उसने एक बार दरवाजे पर जाकर थोड़ी देर तक रंजन की राह देखी और फिर अन्दर आ पानी के घूँटों से अफीम गले से नीचे उतार दी ।

नौ बजे के लगभग कस्तूरी के चाचा आये और उसके दो मिनट बाद ही श्रीलाल और रंजन। कस्तूरी बेहोश पड़ी थी। उसके मुँह से श्वेत झाग आ रहा था। कृष्णनारायण घबड़ाये और रोकर श्रीलाल से बोले—"श्रीलाल बचाओ। देखो मेरी बच्ची को क्या हो गया है ?"

श्रीलाल ने कस्तूरी की नाड़ी देखी और फिर आँखें खोलकर देखते हुए बोले—"अफीम खाई है कस्तूरी ने ।"

"फिर अब ?" कृष्णनारायण एकदम सशंकित हो उठे ।

"इसे हम लोग अपनी डिस्पेंसरी में लिये जाते हैं। आप घर पर ही रहिये। जिसमें किसी को सन्देह न हो।" कहकर श्रीलाल रंजन से बोले—"कस्तूरी को कार में लिटाओ रंजन।"

रंजन ने कस्तूरी को कार में उठाकर लेटा दिया और कार चल दी। कृष्णनारायण आँसू बहाते हुए कार की ओर देखते रह गये।

× × ×

कहीं प्रातः जाकर कस्तूरी होश में आई। अब वह खतरे के बाहर थी। श्रीलाल ने उसको मीठी डाँट बताते हुए कहा—"कोई ऐसा पागलपन करता है पगली ?"

"आपके लिये तो पागलपन ही है। तनिक बाहर निकलकर देखो कैसी थू-थू हो रही है।"

इस पर छूटते ही रंजन हँसकर बोल उठा—"थू-थू तुम्हारे दुश्मनों की हो भाभी साहब। मैं.........।"

कस्तूरी रंजन के मुँह से अपने लिये भाभी शब्द का सम्बोधन सुनकर चौंक गइ। वह बीच ही में बोल उठी—"यह आपने कहाँ का रिश्ता निकाल लिया रंजन बाबू ?"

श्रीलाल कस्तूरी की इस बात से मुस्करा उठे और रंजन ने ब्याहवाला प्रस्ताव कस्तूरी को सुना दिया। कस्तूरी हर्ष से खिल उठी। ऐसा लगता था मानो उसको कोई बहुत बड़ी निधि मिल गई हो।

अभी इन तीनों में प्रेमालाप चल ही रहा था कि कृष्णनारायण आ पहुँचे। कस्तूरी को उन्होंने आते ही गले से लगा लिया और तब तक रंजन ने ब्याहवाली खुशखबरी उनको भी सुना दी। अब तो कृष्णनारायण की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

: ६ :

दूसरे दिन कस्तूरी और श्रीलाल का विवाह कार्य वैदिक रीति से आर्यसमाज भवन में पूर्णतया निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। ब्याह में राठी साहब सपरिवार शामिल हुए थे और जब रानी को कस्तूरी की वास्तविकता ज्ञात हुई तो वह मीरा और बच्चों को साथ लेकर ब्याह में सम्मिलित हुई।

कस्तूरी और रानी की अच्छी पटती थी। अतः उसने किसी भी तरह उसे उस दिन आने न दिया।

रंजन मीरा के साथ घर आया। आते ही मीरा ने उससे फिर वही पुराना पचड़ा छेड़ दिया। वह बोली—"तुम तो कानों में तेल डाले बैठे हो और मुझे एक-एक क्षण काटना कठिन हो रहा है। आज मैं तुमसे हाँ या न सुनकर ही रहूँगी।"

"तुमसे कई बार कहा कि मेरे पीछे न पड़ो मीरा। लेकिन तुम मानती नहीं हो। कह दिया कि मैं तुमको किसी भी शर्त पर

स्वीकार नहीं कर सकता।"

रंजन की यह बात मीरा को तीर-सी लगी। वह होंठ चबा-कर बोली—"अच्छा यह बात है।"

"हाँ। और अगर अब भी न समझो तो तुम्हारी गलती।" कहकर रंजन उसके पास से जाने लगा।

"सुनो।" मीरा ने रोकर पुकारा।

रंजन रुक गया।

मीरा उसके पास आकर रोते-रोते बोली—"मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है। उसके लिये क्षमा माँगती हूँ। अब कभी अपना काला मुँह तुम्हें न दिखाऊँगी।" यह कहकर वह घर के बाहर निकल गई। रंजन कुछ देर तक वहीं पर खड़ा सोचता रहा। फिर यह सोचकर कि कहीं मीरा अपनी जान न दे दे जो अपयश उसको लगे, बाहर भागा। लेकिन तब तक मीरा नजरों से ओझल हो चुकी थी।

रंजन घबड़ा गया। वह बिना कुछ आगा-पीछा सोचे ही भागता चला जा रहा था। मीरा की मृत्यु के भय के कारण वह विक्षिप्त-सा हो गया था। उसे लग रहा था कि आज मीरा अपनी जान पर अवश्य खेल जायेगी। फिर कल पुलिस मुझे हैरान करेगी। तब क्या होगा? यह डर मन में आते ही उसने शहर छोड़ देने का निश्चय कर लिया।

रंजन लपका हुआ पुल की ओर बढ़ा जा रहा था। उसके बाल अस्त-व्यस्त होकर हवा में उड़ रहे थे। हार्नेश फैक्टरी में

दस बजे का घन्टा बजा। वह चौकन्ना हो उठा और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर चलने लगा।

सामने से श्रीलाल की कार आ रही थी। वे कहीं मरीज देखने गये थे। कार की लाइट में उन्होंने रंजन को पहचाना और उसको रोक नीचे उतर उससे पूछने लगे—"इतनी रात को कहाँ जा रहे हो रंजन ?"

"कहीं नहीं। छोड़ दो। मुझे जाने दो। मेरा रास्ता न रोको।" कहकर रंजन कतराकर जाने लगा।

श्रीलाल को उसकी बातें सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने आगे बढ़कर उसका पहुँचा कराकर पकड़ लिया और तनिक डाँटकर बोले—"क्या बात है रंजन ? आदमी की तरह से बात करो।"

"कह दिया कि मुझे आदमी की तरह से बात करना नहीं आता है। मुझे जाने दो।" कहकर वह अपना पहुँचा छुड़ाने लगा।

श्रीलाल समझ गये कि रंजन को कोई आकस्मिक दुःख पहुँचा है। इसलिये इस समय इससे शान्ति का व्यवहार करना चाहिये। वे बोले—"आओ मैं कार से पहुँचाये देता हूँ तुम्हें। कहाँ जाओगे ?"

"शहर से बहुत दूर। क्योंकि मीरा आत्महत्या करने गई है। कल पुलिस मुझे हैरान करेगी।" और यह कहने के साथ ही वह कार में आकर बैठ गया।

अब श्रीलाल की समझ में कुछ-कुछ परिस्थिति आने लगी।

उन्होंने पूछा—"तो मीरा के जान देने से तुम्हारा क्या मतलब है ?"

जवाब में रंजन ने श्रीलाल को पूरी कहानी सुना दी।

श्रीलाल को भी यह सुनकर मीरा की चिन्ता हुई। वे जल्दी से कार अपने घर लाये और रंजन को रामी तथा कस्तूरी की देखभाल में छोड़ मीरा का पता लगाने चल दिये।

: ७ :

दूसरे दिन प्रातः तक रंजन का चित्त स्थिर हो गया था । रात को श्रीलाल काफी देर से लौटे, मगर मीरा का पता कहीं न चला । सवेरे रंजन भी उनके साथ गया । लेकिन निराशा ही हाथ लगी ।

पूरे दो दिन हो गये; किन्तु मीरा का पता न चला । रानी ने गाँव भी श्रीलाल के नौकर को भेजकर पता लगवाया, परन्तु मीरा वहाँ गई ही न थी ।

तीसरे दिन रंजन के घर के पड़ोस वाले कुयें में मीरा की लाश मिली । वह खूब फूल गई थी । नलों के आगे आजकल कुओं को कौन पूछता है । नये कुएँ तो शहरों में बनने से रहे, कोई पुराने ही कुओं की ओर मुँह नहीं करता है । इसीलिये मीरा का शव दो दिन तक कुएँ में पड़ा फूलता रहा और किसी की दृष्टि उस ओर न गई ।

पुलिस आई। पहले तो उसने रंजन को हैरान करने की कोशिश की। लेकिन श्रीलाल के व्यक्तित्व का लिहाज कर मोहल्ले के लोगों से पंचायतनामा लिखवाकर चली गई।

रामी मीरा को देखकर रोने लगी और कस्तूरी माँ आँसू बहाने लगी। रंजन गौर से खड़ा मीरा के मुख की ओर देख रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो मीरा कह रही है कि मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि तुम भी कठोर निकलोगे। मीरा की मुद्रा इस समय भी करुणामयी लग रही थी। रंजन का अन्तर भर आया और उसमें से प्रतिध्वनि हुई। मीरा कह रही थी—"हाथ पकड़कर साथ न छोड़ो।"

रंजन के आँसू नहीं आये। वह टकटकी बाँधे निरन्तर मीरा के शव की ओर देख रहा था।

रामी को मीरा के इस दुखद-निधन पर दुःख हो रहा था। लेकिन उसका अन्तर्मन कह रहा था कि दूसरे के पाँव पर पाँव रखना अपने ही लिये घातक होता है।

जिस समय मीरा की अर्थी उठी। उसी समय पारसनाथ जैन का नौकर अब तक के किराये की रसीद ले आया। पहली तो अब तक के किराये के चुकता की रसीद थी और दूसरी थी अगले महीने की, जो निःशुल्क थी।

रंजन को दोनों रसीदें देखकर आश्चर्य हुआ। रामी यह जानने के लिये अधीर हो रही थी कि आखिर ये कैसी रसीदें उसके हाथ में थमा दीं।

रामी दोनों रसीदें पढ़ने लगी। पढ़कर उसे भी आश्चर्य हुआ। वह उन्हें अपने ब्लाउज की जेब में डालने जा रही थी कि रंजन ने झपटकर उससे रसीदें छीन लीं और फिर फाड़कर फेंक दीं। रामी विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखकर रह गई।

अर्थी चली जा रही थी और रंजन न जाने खड़ा-खड़ा क्या सोच रहा था। सहसा मीरा के शव में कन्धा लगाने का उसे स्मरण हो आया और वह तेजी से उस ओर दौड़ पड़ा।

-~-